बहुविवाह

तर्क, बुद्धि तथा अनुभव की कसौटी पर

इस्लाम से पूर्व पत्नियों की कोई सीमा निश्चित नहीं थी। नरेशों के अन्तःपुर में सौ या इससे अधिक पत्नियाँ पाई जाती थीं। वर्तमान् विश्व पर इस्लाम का उपकार यह है कि इसने केवल चार पत्नियों तक की सीमा निर्धारित कर दी तथा साथ ही चारों पत्नियों के बीच न्याय एवं बराबरी की शर्त भी लगा दी।

लेखक

मौलाना सैयद हामिद अली

अनुवादक

मुहम्मद सलीम सिद्दीक़ी

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह दयावान कृपाशील के नाम से।'

प्रकाशक की ओर से

बहुपत्नीवाद (Polygnism) वर्तमान युग की अनेकानेक ज्वलंत समस्याओं में से कोई गम्भीर समस्या नहीं है। परन्तु गत कुछ वर्षों से पाश्चात्य देशों में — और विशेषत: भारत में — इस्लाम, इस्लामी सभ्यता और मुस्लिम समाज के परिप्रेक्ष्य में इसे ज़ुल्म, अत्याचार, नारी-शोषण और अभिशाप के भयावह व निन्दनीय रूप में पेश किया जाता रहा है।

इस्लाम से पूर्व पत्नियों की संख्या की कोई सीमा निर्धारित न थी। लोग जितनी पत्नियाँ चाहते, बे-रोक-टोक रखते और सबके साथ समानता व न्याय बरतना प्राय: अनिवार्य न होता। राजाओं के महलों में 100, या इससे अधिक का, यहाँ तक कि कई हज़ार रानियों का भी उल्लेख मिलता है। वर्तमान युग में — जिसमें नारी-अधिकार एवं एक पत्नी-व्यवस्था की गुहार म लगाई जा रही है — 'एक पत्नी-प्रणाली' के समर्थक लोगों में बहुत लोग ऐसे भी पाए जाते हैं जो रखैल और अर्या के रूप में कई अवैध 'पत्नियाँ' रखते हैं। जो लोग ऐसी 'पत्नियों' के झंझट में भी पड़ना नहीं चाहते वे कई-कई स्त्रियों के साथ अनैतिक व अवैध यौन-सम्बन्ध रखते हैं। कॉलगर्ल-व्यवस्था, वेश्यागमन, लिव-इन रिलेशन्ज़, डेटिंग, सेक्स-इण्डस्ट्री, विधवा-आश्रमों में जारी देह-व्यापार, भारत के वेश्यालयों और बृहत सेक्स-ट्रेड में लगभग 5 लाख कमसिन व नाबलिग़ कन्याओं के शील का क्रय-विक्रय, नगरों में युवतियों का अपहरण और यौन-अपराध, नाजाइज़ सन्तान से पीछा छुड़ाने के लिए गर्भपात आदि....एक जटिल ज़ंजीर है जिसमें मनुष्य की नैतिक व चारित्रिक स्थिति तथा सामाजिक, कौटुम्बिक व प्रशासनिक व्यवस्था जकड़ी हुई, कराह रही है। क़ानून, अदालतें, प्रशासन, समाजशास्त्रीगण एवं समाज-सुधारक लोग सब-के-सब, इस बिगाड़ के समाधान और इस महात्रासदी के निवारण में न केवल असमर्थ सिद्ध हुए हैं बल्कि इसे फैलते हुए बेबसी से देख रहे हैं।

किन्तु इस्लाम, जो मनुष्य और मानवजाति की हर छोटी-बड़ी समस्या का सुनिश्चित व सुदृढ़ समाधान करता है, न इस समस्या से उदासीन रह सकता था, न अलग-थलग। उसने ऐसा नहीं किया कि पहले तो समस्या को पैदा होने दे, उसे फलने-फूलने दे, मनुष्य के चरित्र एवं समाज के अंदर इसकी जड़ें फैलने दे; फिर इसके समाधान की विधियाँ सुझाए। अपितु इस्लाम ने अपनी शिक्षाओं द्वारा आरम्भिक काल से ही तथा प्रथम इस्लामी समाज-सृजन के चरण में ही, यह समस्या उत्पन्न न होने देने के जो अनेक उपाय किए, उनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय — बहुपत्नीवाद का प्रावधान — था। इसे किसी व्यापक सामाजिक- व्यवस्था और सामान्य सामूहिक नियम का स्थान प्राप्त न था बल्कि मनुष्य की निजी आवश्यकताओं, व्यक्तिगत परिस्थितियों या अधिक-से-अधिक कुछ विशेष सामयिक माँगों के अंतर्गत्, एक पत्नी-प्रथा की सामान्य स्थिति से परे, एक गुंजाइश निकाली गई थी और अधिक से अधिक चार पत्नियों की सीमा निर्धारित कर दी गई। साथ ही साथ, चारों के अधिकारों की पूर्ति में न्याय व समानता बरतना, पति पर अनिवार्य कर दिया गया तथा इस अनिवार्यता को मात्र नैतिक ही नहीं, क़ानूनी (शरई) हैसियत भी दे दी गई। इस प्रकार, इस्लाम ने पाँच बड़े और महत्वपूर्ण काम करके सामान्यतः मानवजाति व मानव-समाज पर, तथा विशेषतः सम्पूर्ण नारी-जाति पर बहुत बड़ा उपकार किया जिसका उदाहरण न केवल मानव-इतिहास में, बल्कि वर्तमान् 'सभ्य व उन्नत' संसार में भी दुर्लभ है:-

(1) मनुष्य व मानव-समाज को नाना-प्रकार की ख़राबियों, हानियों एवं जटिलताओं से बचा लिया,

(2) नारी के यौन-शोषण का द्वार बन्द कर दिया,

(3) अवैध बच्चों की शर्मनाक व जटिल समस्या के उत्पन्न होने का रास्ता बन्द कर दिया,

(4) यौन-अपराध की जड़ काटकर रख दी, और

(5) अबला, बेसहारा और विधवा स्त्रियों (तथा उनके अनाथ बच्चों) के लिए किसी ऐसे परुष के स्थायी व दृढ़ सहारे की राह निकाल दी जो

'बहुपत्नीत्व' पर अमल करने की इच्छा, आवश्यकता व सामर्थ्य रखता हो। अतः इसी का परिणाम है कि मुस्लिम समाज को ''विधवा-आश्रम'' स्थापित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। और यदि, दुर्भाग्यवश बहुपत्नीत्व की इस्लामी गुंजाइश को भी मुस्लिम-समाज में 'बहुत ही बुरा' समझने की जो आम मानसिकता बनती जा रही है वह न होती तो मुस्लिाम समाज में जितने अनाथालय (यतीम ख़ाने) हैं उनको भी स्थापित और संचालित करने की नौबत ही न आती।

इस पूरी पृष्ठभूमि में इस्लाम का दृष्टिकोण और उसका योगदान समझने का प्रयास न करने के फलस्वरूप, स्वयं बहुत-से मुसलमान भी 'बहुपत्नीत्व' के विरोधी हैं तथा बहुत-से ग़ैर-मुस्लिम चिन्तक व बुद्धिजीवी इसके परिप्रेक्ष्य में इस्लाम पर अनुचित आक्षेप करते हैं। प्रस्तुत पुंस्तक मौलाना सैयद हामिद अली द्वारा यद्यपि आज से 20-21 वर्ष पूर्व लिखी गई थी, फिर भी यह आज की परिस्थिति में बहुपत्नीवाद तथा इससे सम्बन्धित इस्लाम के दृष्टकोण को समझने के लिए अत्यंत सहायक पुस्तक है। इसी प्रकार के प्रश्नों को दृष्टि में रखकर इसे कुछ संशोधन एवं परिशुद्धिकरण के साथ हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि यदि ईश्वर ने चाहा तो यह अपेक्षा के मुताबिक अपने विषय में पूर्ण उपयोगी सिद्ध होगी।

हिन्दू धर्म भी बहु पत्नीत्व का पक्षधर है, इस सम्बन्ध में हमारे यहाँ से प्रकाशित अन्य पुस्तक ''बहुपत्नीत्व और भारतीय धर्मग्रन्थ'' का अध्ययन करना लाभप्रद सिद्ध होगा।

हमारे पूर्ण प्रयास एवं यत्न के उपरांत भी यादे पुस्तक में कोई त्रुटि या भूल रह गई हो तो पाठक हमें उससे अवगत करें, हम उनके आभारी होंगे।

1-1-2006 — प्रकाशक

प्रस्तावना

महाराष्ट्र विधान सभा में बहुविवाह – निषेध बिल पेश होने तथा केन्द्र की ओर से मुस्लिम पर्सनल लॉ के विषय में आयोग के गठन की घोषणा होने की देर थी कि भारतीय वातावरण बहुविवाह तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ के विवाद से गूँज उठा।

1960 ई. में मेरा एक लेख "तअद्दुदे-इज़दिवाज" (इस्लाम में बहुविवाह) शीर्षक से मासिक 'ज़िन्दगी' रामपुर (उर्दू) में दो क़िस्तों में प्रकाशित हुआ था। यह लेख जस्टिस एस. एस. धवन के एक निर्णय से उत्पन्न प्रश्नों या भ्रांतियों को दूर करने के लिए लिखा गया था।

बाद में कुछ और गहन अध्ययन एवं चिंतन-मनन के पश्चात् नया लेख तैयार किया गया। कुछ बड़े विद्वजनों ने मुसव्वदे का सूक्ष्म अध्ययन करके कुछ परामर्श दिए। अतः बड़ी सावधानी से मुसव्वदे पर पुनर्विचार किया गया और इसे अन्तिम रूप देकर प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में समस्या के धार्मिक (दीनी), धर्म विधान और क़ानूनी (फ़िक़्ही) पहलुओं पर बहस नहीं की गई है। जहाँ तक तार्किक पहलुओं का सम्बन्ध है, आशा है सत्यान्वेषी पाठक पुस्तक में सन्तोषजनक सामग्री पाएँगे। इंशाअल्लाह !

— सैयद हामिद अली

10, ज़िलहिज्ज 1383 हि०

विरोध की पृष्ठभूमि

पश्चिम की ग़ुलामी

मानव-इतिहास का सबसे उत्कृष्ट पहलू क़ौमों का टकराव तथा उनका मिलाप है। जब क़ौमें परस्पर मिलती हैं या टकराती हैं तो वे एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं तथा एक-दूसरे से प्रभावित होती हैं। विचारों व सिद्धान्तों, परम्पराओं तथा आदतों, ज्ञान-विज्ञान तथा कला आदि का विनिमय आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार एक सभ्यता दूसरी सभ्यता से प्रभावित होती है। यह प्रभाव यदि केवल-अच्छे तत्त्वों को ग्रहण करने तक सीमित रहे तो हितकारी ही नहीं वरन् सभ्यता के विकास के लिए अनिवार्य भी है। परन्तु होता यह है कि अन्य सभ्यताओं के विकृत तत्त्व भी अंगीकार कर लिए जाते हैं। यह स्थिति विशेष रूप से उस समय देखने में आती है जब दोनों क़ौमों में से एक क़ौम शासक हो तथा दूसरी शासित। प्रायः शासित क़ौम हीनभाव का शिकार हो जाती है और उसकी यह हीन भावना (Inferiority Complex) में ग्रस्त हो जाना एक स्वाभाविक बात है और ज़ेहन की यह गिरावट उस समय अपनी चरम सीमा को पहुँच जाती है जब शासक क़ौम सेना तथा हथियारों के अतिरिक्त विज्ञान एवं कला और तथा-कथित तर्कों व प्रमाणों का मैगज़ीन भी अपने साथ रखती हो।

पश्चिम की ग़ुलामी से, पूर्व के रहनेवालों को बहुत-सी हानियाँ हुई हैं, परन्तु सबसे बढ़कर तथा सबसे भयानक हानि यह हुई कि पूर्व के रहनेवाले हीनभावना एवं पश्चिम की मानसिक ग़ुलामी में ग्रस्त हो गए। पूर्ववासी राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक तथा सैन्य-क्षेत्रों में पश्चिम से बुरी तरह पराजित हो चुका था और केवल यही एक बात उसके पराजित होने तथा मानसिक हीनता का शिकार होने के लिए काफ़ी थी, परन्तु इससे बढ़कर मुसीबत यह हुई कि पश्चिम आधुनिक विज्ञान एवं कला, वैज्ञानिक खोजों एवं आविष्कारों, तथा वाद-विवाद एवं तर्कों की नवीनतम तकनीक से पूरी तरह लैस था, जब कि पूर्ववासी इन सभी हथियारों से वंचित था तथा उसके अपने

हथियारों को ज़ंग लग चुका था और वे कुंद हो गए थे। परिणाम यह हुआ — और इसके अतिरिक्त कुछ और परिणाम हो भी न सकता था — कि पूर्ववासी भौतिक क्षेत्र की तरह वैज्ञानिक, वैचारिक, तथा सभ्यता के मैदान में भी यूरोप से मात खा गया। अब वह अपने मन-मस्तिष्क से सोचने के बजाए हर चीज़ को पश्चिम की रंगीन ऐनक से देखने लगा; और अपनी सोची-समझी बात कहने के बजाय यूरोप की बोली बोलने लगा।

पश्चिम ने कहा, सभ्यता तो पश्चिम की सभ्यता है। पूर्व के पास अज्ञानता तथा अशिष्टता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस बात पर प्राचीनकाल से सभ्यताओं का गहवारा रह चुके पूरब ने सिर झुका दिया। पश्चिम ने कहा कि ईश्वर और धर्म अन्धविश्वास तथा पुरानी परम्पराओं की पैदावार हैं तथा वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए इन्हें त्यागना अनिवार्य है तो पूरब ने, जो धर्मों का स्रोत था, इस धर्म-विरुद्ध नीति को निस्संकोच मान लिया।

पश्चिम ने कहा, लज्जा, पर्दा, सतीत्व व कौमार्य की रक्षा, विवाह तथा यौन-सम्बन्धी वफ़ादारी पुरानी तथा निरर्थक बातें हैं, इंसान पशु की भांति एक प्राणी है अत: इसे एक पशु-प्राणी के स्वभाव पर जीवन रूपी भवन का निर्माण करना चाहिए और पशु-प्राणी का सामान्य एवं साधारण गुण यह है कि स्त्री एवं पुरुष को यौन-सम्बन्ध स्थापित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। वे जिससे चाहें तथा जब तक चाहें आनन्द प्राप्त करें और जब उनका मन भर जाए तो इस आनंद एवं खेल को जब चाहें समाप्त कर अलग हो जाएँ। पूर्व ने पश्चिम की इस हैवानियत को भी गले लगा लिया। इस प्रकार वे समस्त चीज़ें जो पूर्वीय परम्पराओं के विचार से ही नहीं, वरन्, सर्वमान्य नैतिक मूल्यों की दृष्टि से भी महापाप समझी जाती रही हैं, पश्चिम से प्रभावित होकर सभ्यता, बुद्धिमत्ता तथा शिष्टता कहलाई जाने लगीं। इसी पर अल्लामा इक़बाल ने क्या ख़ूब कहा –

"था जो नाख़ून बतदरीज वही ख़ूब हुआ
कि ग़ुलामी में बदल जाता है क़ौमों का ज़मीर"

(अर्थात् ग़ुलाम क़ौम को जो बात अप्रिय थी वही प्रिय बन गई क्योंकि दासता और ग़ुलामी में क़ौमों की अंतरात्माएँ बदल जाती हैं।)

इस विषय में भारत की दशा अन्य पूर्वीय देशों से भिन्न नहीं है। निस्सन्देह यहाँ का एक वर्ग शुरू से ही पश्चिमी विचारों तथा सिद्धान्तों का विरोधी रहा है, परन्तु विभिन्न कारणों से; जिनमें से कुछ बाह्य थे तथा कुछ का सम्बन्ध उस वर्ग की अपनी ख़ामियों से था, इस वर्ग की चल न सकी और आधुनिक शिक्षित वर्ग की बड़ी संख्या मानसिक गुलामी का शिकार हो गई। — लॉर्ड मेकाले द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य ही यह था कि ऐसे व्यक्ति तैयार हों जो रंग और नस्ल की दृष्टि से तो हों भारतीय, किन्तु वैचारिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से हों अंग्रेज़।— यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि अंग्रेज़ों की यह नीति सफल सिद्ध हुई। 1947 ई. में भारत अंग्रेज़ों की राजनीतिक गुलामी की ज़ंजीर को तोड़कर स्वतन्त्र तो हो गया, परन्तु पश्चिम के वैचारिक बन्धनों से अभी तक स्वतन्त्र न हो सका और हर नया दिन पश्चिम के वैचारिक शिकंजे के कठोर से कठोरतर होने की सूचना लाता है और इस शिकंजे में भारत को कसने का 'पावन कर्त्तव्य' वही वर्ग निभा रहा है जो अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित 'गला घोंटनेवाले शिक्षण संस्थानों' से डिग्रियाँ लेकर निकला है।

यह पश्चिम की मानसिक गुलामी ही का चमत्कार है कि जब पश्चिम ने बहुपत्नी प्रथा (Polygyny)[1] पर आपत्ति की तो पश्चिम से प्रभावित वर्ग को उसमें कीड़े नज़र आने लगे और इसको अपनाना एक बड़ा अपराध ठहराया जाने लगा।[2] पश्चिम[3] के प्रभाव ने उन्हें इसपर विचार करने की मुहलत ही न दी कि एक से अधिक विवाह में किस पहलू से दोष है ? क्या बहुपत्नी-विवाह उस

---

1. POLYGYNY का अर्थ है बहुपत्नी POLYGANDRY का अर्थ है बहुपति, तथा POLYGAMY शब्द में दोनों भाव हैं अर्थात् 'बहु विवाह' (बहु पति या बहु पत्नी) यद्यपि इसका आम प्रयोग बहु पत्नी विवाह ही के लिए है। (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग 18 शब्द "POLYGYNY" 1959 ई. संस्करण)
2. महाराष्ट्र विधान सभा में क़ानून का जो मुसव्वदा पेश हुआ था उसमें बहुपत्नी-विवाह का दण्ड सात वर्ष की क़ैद था। जुर्माना अलग से हो सकता था।
3. बहुपत्नी-विवाह का कठोर विरोध और उसका क़ानूनी निषेध पाश्चात् सभ्यता ही की देन है इससे पूर्व मानवता इस चीज़ से अपरिचित थी। (इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग 14, शब्द 'चेपेसूपू' अथार्त एक पत्नी विवाह ।

पाशविक स्वभाव के विरुद्ध है जिसपर पश्चिमवाले अपनी पूरी ज़िन्दगी, विशेषत: यौन-सम्बन्धी जीवन का निर्माण करते हैं? निस्संकोच कहा जा सकता है कि पाशविक स्वभाव की गवाही बहुपत्नी-विवाह के निषेध में नहीं वरन् उसकी अनुमति के पक्ष में है।[1] क्या पुरुष का एक से अधिक विवाह करना मानव- स्वभाव के विपरीत है? नहीं! ऐसा नहीं है। एक पत्नी-विवाह (Monogamy) के पक्षधरों ने स्वयं स्वीकार किया है कि पुरुष स्वाभाविक रूप से बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति रखता है[2] यही कारण है कि क़ानूनी प्रतिबंधों के बावजूद पश्चिम में यह प्रवृत्ति समाप्त न की जा सकी वरन् उसने विकृत रूप धारण कर स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों की राह अपना ली। क्या बहुपत्नी-विवाह स्त्री पर ज़ुल्म है? — कदापि नहीं। यह सत्य है कि प्रत्येक स्त्री के लिए यह बात असहनीय है कि कोई अन्य स्त्री उसके पति के प्रेम में उसकी साझीदार बंने। परन्तु एक पत्नी-विवाह का विधान तो स्त्री पर भयंकर ज़ुल्म का कारण बनता है और वह इस तरह कि प्राय: एक पत्नी वाले पुरुष अपनी एक स्त्री के साथ रहते-रहते जब ऊब जाता है तो अपनी पत्नी को तलाक़ देकर अन्य स्त्री से विवाह कर लेता है। वह पहली पत्नी को तलाक़ इस लिए देता है, क्यों कि पहली पत्नी के रहते उसे दूसरा विवाह करने का अधिकार ही नहीं है। या अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध स्थापित करता फ़िरता है और उनपर रुपया-पैसा ही नहीं वरन् अपना प्रेम और वफ़ादारी भी न्योछावर करता है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना सभ्यता एवं नैतिकता के विरुद्ध है? इतिहास साक्षी है कि बहु-पत्नीविवाह की प्रथा प्रत्येक युग में मौजूद एवं नैतिकता पूर्ण मानी जाती रही है। इसे कभी बुरा नहीं समझा गया यहाँ तक कि पाश्चात्य सभ्यता में भी।[3] बहु

---

1. प्रकृति की गवाही के अध्याय में इसका उल्लेख सविस्तार आएगा।
2. देखें इसी पुस्तक का अध्याय 'प्रकृति की गवाही'।
3. यूरोप में भी सत्तरहवीं शताब्दी तक बहु पत्नी-विवाह की प्रथा जारी रही। तथा चर्च और राज्य (STATE) दोनों ने इसे वैध माना है। अब तो यूरोपीय चिन्तक स्पष्ट रूप से कहने लगे हैं कि बहुपत्नी-विवाह की प्रथा सभ्यता व नैतिकता के ऊँचे से ऊँचे स्तर के

पत्नी-विवाह के परिणामस्वरूप नैतिक बिगाड़ का वह तूफ़ान भी नहीं उठा जो एक पत्नी-विवाह को क़ानून द्वारा लागू करने के नतीजे में यूरोप में उमड़ आया।[1] फिर जो लोग एक से अधिक स्त्रियों से उन्मुक्त यौन-सम्बन्धों को उचित ठहराते हों और उन्हें इसमें कोई दोष महसूस न होता हो, आख़िर वे किस मुँह से एक से अधिक स्त्रियों से विधिवत् नैतिक सम्बन्ध को ग़लत ठहराते हैं ? क्या बहुपत्नी-विवाह की प्रथा को इसलिए समाप्त कर दिया जाए कि उससे कुछ आर्थिक जटिलताएँ उत्पन्न हो गई हैं या होती हैं ? यदि बात यही है तो एक पत्नी-विवाह के क़ानूनी प्रचलन को सबसे पहले समाप्त होना चाहिए, क्योंकि इससे यूरोप समाधान रहित अनेक नैतिक जटिलताओं का शिकार हो गया है जिनसे परेशान होकर स्वयं यूरोप के चोटी के चिन्तक बहुपत्नी-विवाह की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।[2] क्या एक से अधिक विवाह इसलिए ग़लत है कि यह धर्म एवं रूहानियत (अध्यात्मिकता) के विरुद्ध है? हमारी जानकारी के अनुसार कोई धर्म जो सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन को पसन्द करता हो, बहुपत्नी-विवाह प्रथा को अवैध नहीं ठहराता, यहाँ तक कि ईसाइयत और हिन्दू धर्म भी बहुपत्नी-विवाह को अवैध नहीं ठहराते।[3] बड़ी-बड़ी महान धार्मिक विभूतियाँ जिन्हें धार्मिक लोग आर्दश मानते हैं, वे स्वयं न केवल बहुपत्नी-विवाह की

भी विपरीत नहीं है। विस्तारपूर्वक आगामी पृष्ठों में देखें।

(इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग 18, शब्द POLYGYNY अर्थात बहुपत्नी विवाह)

1. विस्तार के लिए देखें इस पुस्तक का अध्याय 'बहुपत्नी-विवाह — सामाजिक एवं नैतिक उलझनों का समाधान'।
2. देखें— अध्याय 'बहुपत्नी विवाह— सामाजिक एवं नैतिक उलझनों का समाधान।'
3. बाइबिल पुराना नियम (Old Testament) में बहुपत्नी-विवाह की इजाज़त मौजूद है (21:15), 'बनी-इसराईल' के तमाम श्रेष्ठ व्यक्तियों ने इस पर अमल किया है। 'नया नियम' (बाइबिल) में हज़रत मसीह या सेन्ट पोलोस से इसका निषेध सिद्ध नहीं है। बल्कि ऐसे लेख मौजूद हैं जिनसे बहुपत्नी-विवाह की अनुमति का पता चलता है। (नया नियम, तैमथियस : 3/2,12) अत: सत्रहवीं शताब्दी तक मसीही चर्च ने इसे वैध माना है। हिन्दुओं के धर्मशास्त्र मनुस्मृति में भी बहुपत्नी-विवाह की स्पष्ट इजाज़त ही नहीं वरन् प्रेरणा मौजूद है। (मनु, 9:80-82)

पक्षधर रही हैं बल्कि व्यावहारिक रूप से उन्होंने इसे अपनाया भी है।

उपर्युक्त संक्षिप्त वार्ता से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बहुपत्नी प्रथा का विरोध करने के लिए वास्तव में कोई तर्कसंगत आधार न था। ऐसा नहीं था कि लम्बे तथा गहरे सोच-विचार और वर्षों के व्यावहारिक अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया हो कि बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन समाज के लिए विनाशकारी है। बात केवल इतनी थी कि पश्चिम ने बहुपत्नी-विवाह प्रथा का ज़िक्र बड़ी हीनता के साथ किया था और वह इसे सभ्यता के विरुद्ध समझता था और उसका यह ज़िक्र ही मानसिक गुलामी के मारे हुए लोगों के लिए पर्याप्त था। अत: उन्होंने पश्चिम के स्वर में स्वर मिलाकर बहुपत्नी-विवाह का विरोध शुरू कर दिया।

बहुपत्नी-विवाह के इन पूर्वीय विरोधियों में से जो लोग ख़ुदा या इस्लाम का इनकार करनेवाले थे उन्होंने इसे स्पष्टत: विलासिता तथा कामुकता ठहराया, हालाँकि एक पत्नीत्व पर आग्रह करनेवाली पश्चिमी सभ्यता जिसे ये लोग आदर्श संस्कृति ठहराने पर तुले थे, वह स्वयं व्यभिचार तथा कामवासना की नंगी तस्वीर थी तथा इस सभ्यता के ध्वजावाहक इस तस्वीर को छिपाते भी न थे।

जो लोग पश्चिम से प्रभावित होने के बावजूद इस्लाम से अपना रिश्ता तोड़ने को तैयार न थे, वे इस्लामी शरीअत के दूसरे उन अंशों की तरह, जिनपर पश्चिम को आपत्ति थी इस समस्या को भी फेर-बदल तथा काट-छाँट की खराद पर चढ़ाने लगे। किसी ने कहा कि प्राचीन समाज में बहुपत्नी-विवाह की जड़ें बहुत गहरी थीं। इस्लाम ने इसे अप्रत्यक्ष रूप से तथा क्रमश: समाप्त करने का प्रयास किया। यदि आज इसे क़ानून द्वारा निषिद्ध कर दिया जाए तो यह काम ठीक इस्लाम के अनुकूल होगा। किसी ने कहा कि बहुपत्नी-विवाह की अनुमति अनाथों की बढ़ती हुई संख्या की समस्या के समाधान हेतु दी गई थी। अत: इस उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य के लिए इस इजाज़त से लाभान्वित होना अनुचित है। कुछ अन्य लोगों ने कहा कि क़ुरआन ने इसकी अनुमति पत्नियों के बीच न्याय क़ायम करने की शर्त के साथ दी है और

क़ुरआन ही की एक और आयत बताती है कि पत्नियों के बीच न्याय क़ायम करना इंसानी सामर्थ्य से बाहर है। अतः इस्लाम निषेध के भाव व्यंजक शैली में व्यावहारिक रूप से इसे निषिद्ध ठहराता है।

ये समस्त अनुचित स्पष्टीकरण इस उद्देश्य से दिए जा रहे थे कि बहुपत्नी-विवाह की ईश्वरीय अनुमति को रद्द भी किया जा सके तथा इस्लाम से अपने सम्बन्ध पर आँच भी न आए।

- बहुपत्नी-विवाह के विरोध में अपनों और परायों के शोर-शराबे के बावजूद संयुक्त भारत में क़ानून द्वारा इसकी पूरी इजाज़त थी। अंग्रेज़ों ने भारत पर अधिकार जमाकर भारत का क़ानून तो बदल दिया, परन्तु उन्हें पर्सनल लॉ को छेड़ने का साहस न हुआ तथा उन्होंने मुस्लिम पर्सनल लॉ या "मुहम्मडन लॉ" में बहुपत्नी-विवाह की इजाज़त मौजूद रखी। अतः ब्रिटिश शासनकाल तथा स्वतन्त्र भारत में यह इजाज़त बरक़रार रही और इसी के अनुसार न्यायालयों में फ़ैसले होते रहे।

न्यायपालिका का रुझान

क़ानून द्वारा बहुपत्नी-विवाह की अनुमति थी परन्तु इसके विरुद्ध पश्चिम तथा उसके अनुयायियों का प्रचार भी जारी रहा। आधुनिक शिक्षित वर्ग पाश्चात्य सभ्यता तथा उसके प्रोपेगण्डे से प्रभावित हो रहा था। यही वह वर्ग था जिसके हाथ में देश की बागडोर थी और यही वर्ग व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका पर छाया हुआ था। यह इसी का परिणाम है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ में बहुपत्नी-विवाह की स्पष्ट अनुमति के बावजूद कुछ न्यायालयों के फ़ैसलों में ऐसी टिप्पणियाँ मिलती हैं जो बहुपत्नी-विवाह के विषय में पाश्चात्य दृष्टिकोण की परिचायक हैं। जैसे कोलकाता हाई कोर्ट के एक फ़ैसले में ये शब्द मौजूद हैं :

> "A second marriage is not a single but a continuing wrong to the first wife."[1]

---

1. इलाहाबाद उच्च नयायालय के माननीय न्यायाधीश एस.एस. धवन ने अपने एक फ़ैसले

"दूसरा विवाह केवल एक नाइंसाफ़ी ही नहीं, वरन् पहली पत्नी के साथ निरन्तर जारी रहनेवाली नाइंसाफ़ी है।"

इसी प्रकार का एक और दृष्टान्त इलाहाबाद उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश एस. एस. धवन की वे टिप्पणियाँ हैं जो उन्होंने रामपुर के एक केस– इतवारी बनाम असग़री – के फ़ैसले में बहुपत्नी-विवाह के विषय में की हैं। यह फ़ैसला आल इंडिया रिपोर्टर 1960 ई. भाग-47, इलाहाबाद सेक्शन के पृष्ठ 684 से 688 पर प्रकाशित हुआ है। यहाँ हम नीचे इस फ़ैसले के कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :

"वर्तमान् केस में पति के दावे की बुनियाद यह है कि प्रत्येक मुसलमान को उसके पर्सनल लॉ के तहत यह अधिकार प्राप्त है कि वह एक ही समय में अधिक से अधिक चार तक पत्नियाँ रख सकता है, उसका तर्क यह है कि यदि पहली पत्नी को पति द्वारा छोड़ देने की अनुमति केवल इस बुनियाद पर दे दी गई कि पति ने दूसरा विवाह कर लिया है तो यह उसके इस अधिकार का खुला इनकार होगा। आवश्यक है कि इस तर्क की समीक्षा की जाए।[1] मुस्लिम लॉ बहुपत्नी-विवाह की अनुमति देता है, परन्तु उसने कभी इसको प्रोत्साहित नहीं किया है। मुसलमानों में बहुपत्नी-विवाह का प्रमाण एवं अनुमोदन (Sanction) क़ुरआन की चौथी सूरा की तीसरी आयत में मिलता है :

में, जिसका विवरण आगे आ रहा है, इन शब्दों का बार-बार ज़िक्र किया है। इन शब्दों के लिए उन्होंने यह हवाला दिया है– Ayatun nisa beebee vs. Karam Ali (ILR 36 Cal 23)

1. यह है बहस का बुनियादी नुक्ता! वादी का कहना यह है कि दूसरा विवाह करने की बुनियाद पर पहली पत्नी पति को नहीं छोड़ सकती तथा माननीय न्यायाधीश के फ़ैसले का सारांश यह है कि दूसरे विवाह करने के पश्चात् पहली पत्नी को पति के साथ रहने पर न्यायालय विवश नहीं कर सकता। और यदि स्त्री इस बुनियाद पर निकाह निरस्त कराना चाहती है तो न्यायालय विवाह विच्छेद कर देगा। मानो दूसरा विवाह कोई अपराध या ज़ुल्म है जो विवाह विच्छेद का कारण बन सकता है!

'और अगर तुमको अनाथों के साथ अन्याय का भय हो तो जो स्त्रियाँ तुम्हें पसन्द आएँ उनमें से दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से विवाह कर लो। लेकिन अगर तुम्हें भय हो कि उनके साथ न्याय न कर सकोगे तो फिर एक पत्नी रखो या उन स्त्रियों को अपने दाम्पत्य- जीवन में लाओ ज़ो तुम्हारे क़ब्ज़े में आई हैं (अर्थात् लौंडी)।'

यह आदेश वास्तव में सीमित करने के लिए है और इसने एक ही समय में रखी जानेवाली पत्नियों की संख्या को घटाकर चार कर दिया है। इस आदेश ने बहुपत्नीत्व की हवस की — जो पुरुषों में बड़े पैमाने पर फैली हुई थी — एक सीमा निश्चित कर दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि चार पत्नियाँ रखने की अनुमति के साथ यह सलाह भी दी गई है कि 'न करना उत्तम है' और पतियों को यह आदेश दिया गया है कि वे एक ही पत्नी पर संतोष करें, यदि वे कई पत्नियों के बीच निष्पक्ष नहीं रह सकते–एक ऐसी शर्त जो कई मुस्लिम विधिवेत्ताओं के निकट असम्भव शर्त है। उनका दृष्टिकोण यह है कि मुस्लिम लॉ व्यवहारतः बहुपत्नी-विवाह को हतोत्साहित करता है और वे यह बात इसी शर्त की बुनियाद पर कहते हैं।''

(पृष्ठ 686)

''इसी लिए मेरी राय यह है कि मुस्लिम लॉ, जैसा कि वह भारत में प्रचलित है,[1] बहुपत्नी-विवाह को एक ऐसी प्रथा समझता है जिसे सहन किया जा सकता है परन्तु उसको प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता । इसने पति को ऐसा कोई बुनियादी हक़ नहीं दिया है कि वह

---

1. ये शब्द व्याख्या योग्य हैं। मुस्लिम लॉ अथवा मुहम्मडन लॉ वास्तव में तो वह है जो फ़िक़्ह की पुस्तकों में मौजूद है। और भारत की हद तक ये किताबें हिदाया, फ़तावा आलमगीरी और सिराजी हैं। यह पुस्तकें मुस्लिम लॉ की बुनियाद मानी गई हैं। परन्तु इस मुस्लिम लॉ के साथ ब्रिटिशकाल में बहुत से ग़लत या त्रुटिपुर्ण क़ानून शामिल कर दिए गए। तथा ब्रिटिश आदालतों के बहुत से फ़ैसले दृष्टाँतों का रूप ग्रहण कर गए। यह है मुस्लिम लॉ जैसा कि वह भारत में लागू है।

पहली पत्नी को इस बात पर विवश करे कि वह दूसरी पत्नी के साथ मिलकर हर प्रकार की परिस्थितियों में उसके दाम्पत्य में शरीक हो।" (पृष्ठ 686)

"आज मुसलमान स्त्री समाज में चलती फिरती है और कई पत्नियाँ रखनेवाले भारतीय पति के लिए यह असम्भव है कि वह इन सबको अपने साथ रखे।[1] उसे अपनी सामाजिक ज़िन्दगी में शिरकत के लिए उनमें से अनिवार्य रूप से एक का चयन करना होगा। और इस प्रकार नई परिस्थितियों में बहुपत्नी-विवाह में निष्पक्ष रवैया असम्भव हो जाएगा।" (पृष्ठ 687)

"परन्तु भारतीय मुसलमानों की सामाजिक परिस्थितियों तथा आदतों में परिवर्तन आ गए हैं। साथ ही मुस्लिम समुदाय के विवेक में बदलाव आया है। आज दूसरी पत्नी घर में लाई जाती है तो इसका अर्थ आम तौर पर पहली पत्नी का अपमान होता है। उसके विषय में बेतुके प्रश्न उठते हैं, बेदर्दी के साथ भौंहें तन जाती हैं, हास्यपूर्ण ढंग से उँगलियाँ उठने लगती हैं और समाज स्वयं ही उसे नीचे गिरा देता है।" (पृष्ठ 687)

"आज यह ज़िम्मेदारी पति की है जो दूसरा विवाह करता है कि वह अपने इस कृत्य का स्पष्टीकरण करे और सिद्ध करे कि उसने दूसरा विवाह करके पहली पत्नी का अपमान अथवा उसके साथ निर्दयता नहीं की है। उदाहरण के लिए वह निर्दयता के इलज़ाम को यह सिद्ध करके दूर कर सकता है कि उसने दूसरा विवाह पहली पत्नी की सलाह से किया है या कुछ अन्य संबंधित परिस्थितियाँ बता सकता है जिनसे निर्दयता के विचार का खण्डन हो जाए। परन्तु उचित स्पष्टीकरण न होने की दशा में नवीन परिस्थितियों के तहत अदालत इस निष्कर्ष पर पहुँचेगी कि पति द्वारा दूसरा विवाह करने के अमल से पहली पत्नी के साथ बेरहमी हुई है और आदलत के लिए यह

1. मानो इस्लामी दृष्टिकोण से सब पत्नियों को हर समय साथ रखना ज़रूरी है।

बात न्याय के विरुद्ध होगी कि वह पत्नी की मरज़ी के बिना ऐसे पति के साथ उसे रहने के लिए बाध्य करे।[1] (पृष्ठ 687)

फ़ैसले के उद्धरण लम्बे हो गए हैं परन्तु इसके बिना परिस्थितियों की जटिलता पर प्रकाश नहीं पड़ सकता था।[2]

उच्च न्यायालय की कुर्सी राजनेता के स्टेज से बिल्कुल भिन्न होती है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश एक-एक शब्द तौलकर लिखता है और इस बात का भरपूर प्रयास करता है कि क़ानून की सही व्याख्या और सही मौक़े पर उसको लागू करने की भारी ज़िम्मेदारी को ठीक-ठीक निभा सके। वह जानता है कि उसके शब्दों के प्रभाव बहुत दूरगामी होते हैं। फिर ये उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय ही हैं जो प्रशासन की धाँधलियों के विपरीत क़ानून की रक्षा करते हैं। इस बारे में भारत की बड़ी अदालतों का रिकार्ड बहुत ही शानदार रहा है। इन दोनों पहलुओं को सामने रखिए और फिर उपर्युक्त उद्धरणों पर ग़ौर कीजिए। तत्पश्चात् आपको अन्दाज़ा हो सकेगा कि वर्तमान् शिक्षित वर्ग बहुपत्नी-विवाह के विषय में पाश्चात्य विचारधारा से कितना प्रभावित है ?[3]

माननीय न्यायाधीश ने अपने निर्णय में पिछले कई सुप्रसिद्ध न्यायाधीशों के फ़ैसलों के हवाले दिए हैं। इन हवालों से यह वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है कि माननीय न्यायाधीश ने अपने फ़ैसले में जो बातें कही हैं, वे

---

1. मानो दूसरा विवाह कर लेने के पश्चात् पहली पत्नी को विवाह विच्छेद कराने का अधिकार है। इस प्रकार बहुपत्नी विवाह सरलतापूर्वक एक पत्नी विवाह में परिवर्तित हो जाता है दूसरी पत्नी आई और पहली पत्नी विदा हुई, पत्नी एक की एक ही रही!
2. यह फ़ैसला पूरे का पूरा अध्ययन करने योग्य है। हमारा मशविरा है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ की समस्या पर सोच-विचार करनेवाले महानुभाव इस फ़ैसले का और इसके साथ उन समस्त महत्वपूर्ण फ़ैसलों का अध्ययन करें जो बहुपत्नी-विवाह तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ के विषय में उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय ने दिए हैं। इसके पश्चात् ही इस समस्या की जटिलताओं का अनुमान लगाया जा सकेगा।
3. बहु विवाह के विषय में न्यायपालिका के इस रुझान का कारण केवल पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होना ही नहीं है वरन् इसके कुछ अन्य कारण भी हैं, जिनका उल्लेख 'मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन के आन्तरिक उत्प्रेरकों' में आ रहा है।

उनकी अपनी निजी उपज नहीं हैं, बल्कि उनसे पहले भी इस विषय में अनेक बार ऐसी बातें कही जा चुकी हैं और माननीय न्यायाधीश का क़दम उसी क्रम का अगला और स्वाभाविक क़दम है। आशंका इस बात की है कि यदि इस दिशा में कुछ क़दम और उठ गए तो वह मंज़िल निकट आ जाएगी जब शाब्दिक स्तर पर तो 'बहुपत्नी-विवाह' की इज़ाज़त होगी परन्तु व्यावहारिक रूप से वह निषिद्ध ठहरा दिया जाएगा, यह स्थिति इस्लाम पर ईमान और यक़ीन रखनेवाले इस्लामी विधिवेत्ताओं के लिए विशेष ध्यान देने के योग्य है।

बहुपत्नी-विवाह के विरोध का एक महत्त्वपूर्ण कारण आधुनिक शिक्षित वर्ग का पश्चिम से प्रभावित होना तथा न्यायपालिका का बहुपत्नी-विवाह के प्रति विरोधात्मक रुझान होना है, जैसा कि ऊपर देख चुके हैं। निस्सन्देह इससे उन लोगों को प्रोत्साहन मिला है जो इसे क़ानून द्वारा निषिद्ध देखना चाहते हैं।

शासन के स्वरूप में परिवर्तन

भारत के स्वतन्त्र होने के बाद देश में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गईं हैं जो बहुपत्नी-विवाह के विरोध ही का नहीं, बल्कि पूरे मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन और निरस्तीकरण का प्रयास कर रही हैं। आगे बढ़ने से पहले इन परिस्थितियों पर नज़र डाल लेना समस्या के समझने में आसानी होगी।

वर्तमान परिस्थितियों में सबसे बड़ा परिवर्तन शासन के स्वरूप का परिवर्तन है। अंग्रेज़ की सत्ता एक बाहरी शक्ति की सत्ता थी। अतः उसे जनसाधारण की कोमल-भावनाओं का अधिक ख़याल रखना पड़ता था। यही कारण है कि उसने देश के क़ानून बदल देने के बावजूद पर्सनल लॉ में अनुचित हस्तक्षेप न किया। वह जानता था कि पर्सनल लॉ के विषय में लोगों की भावनाएँ बड़ी नाज़ुक होती हैं। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम से (जिसे अंग्रेज़ों ने ग़दर का नाम दिया था) अंग्रेज़ों को यह सबक़ मिल गया था कि जनता की धार्मिक भावनाओं तथा संवेदनाओं को आहत न किया जाए। वरना वे विदेशी सत्ता का जुआ अपने कंधों से उतार फेंकेंगे। 15 अगस्त 1947 ई. को विदेशी सत्ता समाप्त हो गई और भारतवासियों पर स्वयं भारतवासियों का शासन लागू

हो गया। इस सत्ता ने अपने को जनता का प्रनिनिधि समझकर उनके सामाजिक सुधार को अपना दायित्व तथा अपना अधिकार माना। सामाजिक सुधार का पर्सनल लॉ से गहरा सम्बन्ध था। अतः इसके विषय में अंग्रेज़ की सावधानी और दूरदर्शिता की नीति त्याग दी गई और हिन्दू पर्सनल लॉ में परिवर्तन एवं संशोधन से सुधार की शुरुआत हो गई। शासक वर्ग ने इस मामले में जनता को विश्वास में न लेकर संसद में बहुमत का सहारा लिया और हिन्दुओं की इच्छाओं और भावनाओं के विपरीत हिन्दू पर्सनल लॉ में संशोधन कर डाला।

दूरदर्शी लोगों ने उसी समय भाँप लिया था कि हिन्दू पर्सनल लॉ के पश्चात् निस्सन्देह मुस्लिम पर्सनल लॉ की बारी आएगी। जब बहुसंख्यकों के पर्सनल लॉ पर संशोधन एवं परिवर्तन की चोट पड़ सकती है तो बेचारे अल्पसंख्यकों का पर्सनल लॉ संशोधन एवं परिवर्तन के रोलर से किस प्रकार और कब तक बच सकता है। बहुसंख्यक वर्ग भी इसे शान्तिपूर्वक कैसे सहन कर सकता था कि उसका पर्सनल लॉ तो बदल जाए और मुसलमानों का पर्सनल लॉ ज्यों का त्यों रहे।[1]

संविधान के दिशा-निर्देशक सिद्धान्त

यह केवल कोरी कल्पना न थी। भारतीय संविधान (Constitution of India) के नीति निर्देशक तत्त्वों (Directive Principles) में ऐसे सिद्धान्त मौजूद हैं जो हिन्दू और मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन ही के नहीं बल्कि पूरे देश के लिए समान नागरिक संहिता की व्यवस्था की माँग करते हैं। इन नीति-निर्देशक तत्त्वों की हैसियत निस्सन्देह क़ानून की नहीं है, परन्तु वे संविधान की आत्मा हैं तथा नीति-निर्माण और क़ानून बनाने के विषय में हुकूमत के लिए

---

1. संसद में हिन्दू कोड बिल पास होते समय हिन्दू सांसदों ने भारी प्रदर्शन किया था कि यह बिल मुसलमानों पर क्यों नहीं लागू होता। उस समय हुकूमत की ओर से उत्तर मिला था कि समय आने पर ऐसा भी होगा। अब जबकि हुकूमत के निकट इसका समय आ गया है, हिन्दू प्रेस की माँग ज़ोर पकड़ती जा रही है और वह हुकूमत की कमज़ोरी तथा मुसलमानों की ओर से विरोध, दोनों पर क्रुद्ध हैं और हिन्दू सांसद पहले की तरह अब भी मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन की माँग कर रहे हैं।

मार्गदर्शक की हैसियत रखते हैं।[1] भारत के संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर ने इन सिद्धान्तों का महत्व इन शब्दों में स्पष्ट किया है :

> "नीति-निर्देशक तत्त्व (Directive Principles) उन अनुदेशपत्रों के समान हैं जो ब्रिटिश सरकार की ओर से गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट 1935 ई. के तहत गवर्नर जनरल को, उपनिवेशों के गवर्नरों को और हिन्दुस्तान के गवर्नरों को जारी किए जाते थे। जिसे नीति-निर्देशक तत्त्व (Directive Principles) कहा जा रहा है वे हिदायतें न्यायपालिका तथा प्रशासन के लिए हैं। जो भी सत्ता में आएगा वह इस बात के लिए स्वतन्त्र न होगा कि शासन को जैसे चाहे चलाए। उसे उन हिदायतों का, जिन्हें नीति-निर्देशक तत्त्व' का नाम दिया गया है, सम्मान करना होगा, वह उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।" (C.A.P. Vol. II, P. 41)

संविधान के इस अध्याय "नीति निर्देशक तत्त्व" के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था:

> "संविधान के इस अंश की रचना करते हुए विधान सभा भविष्य की न्यायपालिका और प्रशासन को विशेष हिदायतें देती है कि वे किस प्रकार से क़ानून बनाने की प्रक्रिया को, और प्रशासनिक शक्ति को, जो उन्हें प्राप्त होगी, प्रयोग करें। निस्सन्देह (संविधान के) इस अंश में उन सिद्धान्तों को केवल पवित्र घोषणाओं की हैसियत से रखना अभीष्ट नहीं है। इस विधान सभा का उद्देश्य यह है कि भविष्य में न्यायपालिका और प्रशासन दोनों ही इन सिद्धान्तों से केवल मौखिक हमदर्दी न करें बल्कि इन उसूलों को तमाम विधि-निर्माण और प्रशासनिक प्रयासों का आधार बनाया जाए जो अब के बाद देश की सरकार चलाने के विषय में किए जाएँ।"(C. A. P. VII P. 476)

---

1. भारतीय संविधान में इन सिद्धान्तों का पूरा नाम है Directive Principles Of State Policy (राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व) इस नाम ही से इन सिद्धान्तों की हैसियत और महत्व स्पष्ट हो जाता है।

14, मार्च 1955 ई. को तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने संविधान में चौथे संशोधन (Fourth Amendment) का प्रस्ताव पेश करते हुए लोकसभा में कहा था कि जब मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) और नीति-निर्देशक तत्त्वों में टकराव होगा तो प्रमुखता नीति-निर्देशक तत्त्वों ही को दी जाएगी तथा मौलिक अधिकारों को नीति-निर्देशक तत्त्वों के तहत ही काम करने का अवसर मिलेगा।[1]

यह है नीति-निर्देशक तत्त्वों की हैसियत और उनका महत्व! इन नीति निर्देशक तत्त्वों में से एक तत्त्व, (धारा 44) यह है :

> "The State shall endeavour to secure for the citizens a uniform civil code throughout the territory of India."[2]
>
> अर्थात् "राज्य प्रयत्न करेगा कि समस्त भारत के नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) उपलब्ध कराए।"[3]

हिन्दू पर्सनल लॉ में संशोधन इस धारा की एक अनिवार्य माँग थी। जिसका अर्थ यह है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन तथा काट-छाँट की जाए और ताकि पूरे देश में समान नागरिक संहिता लागू हो सके।

जिस ज़माने में हिन्दू पर्सनल लॉ में संशोधन किया जा रहा था केन्द्रीय विधि मन्त्री श्री पाटेस्कर ने एक रेडियो भाषण में कहा था :

> "हमने अपने संविधान के लागू होने, अर्थात् 26 जनवरी 1950 ई. के पश्चात् सोशल मैरिज एक्ट तथा हिन्दू मैरिज़ एक्ट पास किए हैं। हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून की रूपरेखा संसद में विचाराधीन है। ये

1. Constitutional Government in India, by M.V. Pylee Page-317. And India's constitution (A short brochure on the Constitution of India, by Publications Division, Government Of India)
2. Constitution of India, Chapter IV, Directive Principles of State Policy, Clause 44.
3. भारत के संविधान में इस धारा का शीर्षक है– "Uniform Civil Code for the Citizens" नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता (संस्करण मार्च 1963 ई.)

सब समान नागरिक संहिता बनाने के लिए किए गए प्रयास हैं। केवल भावुक लोग इन प्रयासों का विरोध कर रहे हैं और पूछते हैं कि हम केवल हिन्दू क़ानून ही को क्यों एक ज़ाब्ते में लाने का प्रयास कर रहे हैं। इसका उत्तर स्पष्ट है। पूरे समाज को एकता के सूत्र में पिरोने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए हमें सर्वप्रथम उसके बड़े हिस्से को ही एकत्र करना होगा। हम उस समय तक समस्त भारत के लिए समान नागरिक संहिता बनाने के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकते, जबतक कि हम देश के उन लोगों के पर्सनल लॉ को एक नियम के अधीन नहीं ले आते जिन्हें हिन्दू कहा जाता है और जो देश की जनसंख्या का 85 प्रतिशत भाग हैं।'' (25 अगस्त 1955 ई.)

इन्हीं श्री पाटेस्कर ने उसी ज़माने में एक प्रेस कान्फ़्रन्स में कहा था :

''हिन्दू क़ानूनों में जो सुधार लाए जा रहे हैं वे निकट भविष्य में भारत की समस्त आबादी पर लागू किए जाएँगे। यदि हम ऐसा क़ानून बनाने में सफल हो गए जो हमारी 85% जनसंख्या के लिए हो तो उसे शेष जनसंख्या पर लागू करना कठिन न होगा। उस क़ानून से पूरे देश में समता उत्पन्न होगी। एक बार देश का बहुसंख्यक वर्ग इस क़ानून की आवश्यकता को स्वीकार कर ले तो दूसरों पर इसे लागू करना कठिन न होगा। इस क़ानून में कोई बात धार्मिक नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक क़ानून है।''

बात केवल इतनी ही नहीं है, जिस समय यह धारा (धारा 44) संसद के सामने बहस के लिए पेश हुई थी तो मुस्लिम सांसदों ने मुस्लिम पर्सनल लॉ के विषय में अपनी शंकाएँ प्रकट की थीं तथा उसमें संशोधन भी पेश किया था। उनमें से एक संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन साहब का था जो निम्नलिखित है :

''व्यक्तिगत क़ानून (Personal Laws) बदले न जाएँगे जब तक कि (सम्बन्धित) समुदाय से पहले ही स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाए, ऐसे तरीक़े से जिसे विधान-मण्डल तय कर दे।''

ये समस्त संशोधन रद्द कर दिए गए परन्तु डॉ. अम्बेडकर ने विश्वास

दिलाया :

"मुझे इस मामले में इन लोगों (मुस्लिमों) की भावनाओं का अच्छी तरह एहसास है परन्तु मेरा विचार है कि शायद इन्होंने संविधान के मसव्वदे की धारा 35 (जो अब धारा 44 है) का अर्थ निकाला है कि यह धारा बताती है कि राज्य समस्त नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता उपलब्ध कराने का प्रयत्न करेगा। इस धारा में यह नहीं कहा गया है कि जब वह नागरिक संहिता बन जाएगी तो राज्य उसे समस्त नागरिकों पर केवल इस लिए लागू कर देगा कि वे नागरिक हैं। यह संभव है कि भविष्य की संसद ऐसी कोई धारा रख दे जिसकी शुरुआत यह हो कि नागरिक संहिता केवल उन लोगों पर लागू होगी जो यह घोषणा कर दें कि वे अपने आपको इसका पाबन्द बनाना चाहते हैं ताकि पहले चरण में ही नागरिक संहिता का कार्यान्वयन स्वैच्छिक हो सके।"

उपर्युक्त उद्धरण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

1. संविधान के अनुसार हुकूमत की बुनियादी नीति यह होनी चाहिए कि भारत के समस्त नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता उपलब्ध कराए।

2. पर्सनल लॉ भी इसी नागरिक संहिता में सम्मिलित है और उसे बदलना सरकार की नीति का अनिवार्य अंग है।

3. इस बात की कोई संवैधानिक गारेंटी मौजूद नहीं है कि सम्बन्धित समुदाय की इच्छा तथा स्वीकृति के बिना उसके पर्सनल लॉ में संशोधन न किया जायगा। इस प्रकार के समस्त संशोधन विधान-सभा ने रद्द कर दिए।

4. संविधान-निर्माता डॉ. अम्बेडकर के मौखिक आश्वासन में भी इसकी कोई गारेंटी मौजूद नहीं है । उन्होंने केवल इस सम्भावना को माना है कि सरकार शुरू में इस नागरिक संहिता को उन लोगों पर

लागू करेगी जो अपने आपको स्वेच्छापूर्वक इसका पाबन्द बनाने को तैयार हों। उनके आश्वासन में यह भाव स्पष्ट रूप से मौजूद है कि अन्ततः समान नागरिक संहिता सभी पर लागू होगी और बलपूर्वक लागू होगी।

5. हिन्दू कोड बिल पास करना समान नागरिक संहिता उपलब्ध करने ही की एक कोशिश है। इस प्रयास के द्वारा संसद ने देश की 85% जनसंख्या की नागरिक संहिता समान कर दी है। इसके पश्चात् दूसरों पर भी उसे क्रमशः लागू किया जाएगा।

यह है वह नाज़ुक स्थिति जिसमें स्वयं भारतीय संविधान ने मुसलमानों को ला खड़ा किया है।

राष्ट्रीयता की विशेष परिकल्पना

परिस्थितियों का एक रुख़ यह है कि आज सत्तारूढ़ दल — कांग्रेस — भारतीय राष्ट्रीयता के विषय में शुरू ही से चरम पंथी दृष्टिकोण रखता है जिसमें मुसलमानों के लिए अलग तहज़ीबी और मिल्ली वुजूद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।[1]

भारत की विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियाँ, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के संघर्ष, हिन्दू-मुस्लिम दंगे, देश के विभाजन, और विभाजन के पहले और बाद की संकटकालीन परिस्थितियों ने इस दृष्टिकोण को और अधिक उग्र बना दिया और कांग्रेस की दृष्टि में राष्ट्रीय एकता का इसके सिवा कोई स्वरूप न रहा कि मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय अपनी 'सामुदायिक पहचान' को त्यागकर पूरी तरह बहुसंख्यक वर्ग में विलीन हो जाए। उर्दू भाषा का दमन, हिन्दी भाषा का बलात् प्रचलन, संस्कृत को बढ़ावा देना तथा प्रारंभिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में हिन्दू माइथॉलोजी (देवमालाई अथवा पौराणिक कहानियों) का वर्चस्व आदि इसी सिलसिले की कड़ियाँ हैं। मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन को भी इस क्रम की एक महत्वपूर्ण कड़ी माना गया।

---

1. दुर्भाग्यवश भारत के समस्त राजनैतिक दल इस विषय में कांग्रेस से सहमत हैं।

मुसलमानों की विशेष परिस्थितियाँ

देश के विभाजन के पश्चात् मुसलमान राजनैतिक दृष्टि से प्रभावहीन तथा संगठन की दृष्टि से बिना सेनापति की फ़ौज के समान हो गए। उनकी न तो कोई सर्वसम्मत आवाज़ रही और न सर्वमान्य प्लेटफ़ार्म![1] देश की विशेष परिस्थितियों ने उनमें हीनता की भावना, भय, निराशा तथा कायरता की मिली-जुली स्थिति उत्पन्न कर दी। उनमें ऐसे लोगों की संख्या बढ़ने और उभरने लगी जो हर चढ़ते सूरज के पुजारी बनते चले गए और जो तुच्छ निजी स्वार्थों की प्राप्ति हेतु दीन (धर्म) और मिल्लत (मुस्लिम समुदाय) को निस्संकोच क़ुरबान कर सकते थे और क़ुरबान करते रहे। सुप्रसिद्ध शायर डॉ. इक़बाल ने कहा था कि

जाफ़र अज़ बंगाल व सादिक़ अज़ दक्किन
नंगे मिल्लत, नंगे दीं, नंगे वतन

अर्थात् "बंगाल का जाफ़र तथा दक्षिण का सादिक़ दोनों मिल्लत, दीन और वतन के लिए शर्म का कारण थे।"

ये 'जाफ़र' और 'सादिक़' पहले इक्का-दुक्का होते थे, परन्तु अब मुस्लिम उम्मत में इनकी कोई कमी नहीं है। ये अपने घटिया और तुच्छ स्वार्थों के लिए सरकार को गुमराह करने और उसे इस्लाम तथा मुसलमानों के विरुद्ध उभारने से भी नहीं चूकते। इन में ऐसे मुसलमान भी हैं जिनका, इस्लामी मूल्यों

---

1. इन परिस्थितियों में मुसलमान नेताओं की भूमिका का एक छोटा सा नमूना यह है कि मुसलमानों के सर्वसहमत विरोध के परिणामस्वरूप जब केन्द्रीय विधि मन्त्री ने 20 अगस्त 1963 ई. को आयोग के गठन के सुझाव के स्थगन का ऐलान किया और कहा, "सरकार की नीति यह नहीं है कि अल्पसंख्यकों के बारे में पहल करे। हाँ, यदि मुसलमानों का बहुमत मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन चाहता है तो सरकार निस्सन्देह यह क़दम उठाने की स्थिति में हो सकती है।" तो राज्य सभा के कश्मीरी सदस्य श्री मुहम्मद अली तारिक़ ने कहा, "जब सुधार करना सरकार का काम है और जब मुस्लिम देशों में शरीअत के क़ानूनों में संशोधन किया गया है तो भारत में यह प्रश्न क्यों उठाया जा रहा है कि मुसलमान ख़ुद इन क़ानूनों में संशोधन के लिए सरकार पर दबाव डालें।"

पर से विश्वास समाप्त हो चुका है। वे पाश्चात्य सभ्यता, साम्यवाद (Communism) आदि पर विश्वास रखते हैं तथा इस्लाम के विरुद्ध प्रत्येक अवसर से फ़ायदा उठाने को तैयार रहते हैं। इन परिस्थितियों में यदि सरकार मुसलमानों की भावनाओं का सम्मान न करे और भ्रष्ट चापलूस मुस्लिम नेताओं के परामर्श से मुस्लिम पर्सनल लॉ के लिए किसी आयोग के गठन की घोषणा कर दे और महाराष्ट्र विधान-सभा में बहुपत्नी-विवाह के निषेध का बिल पेश हो जाए तो यह आश्चर्य की बात नहीं हैं।[1]

अँग्रेज़ी क़ानून का दबाव

पर्सनल लॉ में संशोधन के इन बाह्य प्रेरकों के अतिरिक्त कुछ आन्तरिक प्रेरक भी थे जिनका सम्बन्ध पर्सनल लॉ को व्यावहारिक रूप देने और उसके लागू किए जाने से है।

एक पेचीदगी यह थी कि जीवन के समस्त क्षेत्रों में अँग्रेज़ी क़ानून लागू था और निकाह, तलाक़, मह्र, विरासत, शुफ़आ तथा वक़्फ़ आदि की हद तक इस्लामी क़ानून जारी थे। ये दोनों प्रकार के क़ानून विचारधारा, स्वभाव तथा रूपरेखा आदि हर चीज़ की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न बल्कि परस्पर विपरीत थे। इसी कारण मुस्लिम पर्सनल लॉ अँग्रेज़ी क़ानून के चौखटे में फ़िट नहीं होता था। बार-बार इन दोनों क़ानूनों में टकराव होता और अन्ततः चोट मुस्लिम पर्सनल लॉ पर पड़ती। मुस्लिम पर्सनल लॉ की ग़लत व्याख्या करते और उसमें संशोधन कर देते। वह इसलिए कि प्रभुता सम्पन्न क़ौम का संविधान तथा देश का सर्वव्यापी क़ानून होने की हैसियत से प्रमुखता अंग्रेज़ी क़ानून ही को प्राप्त थी।

इस्लामी क़ानून में दक्ष जजों का अभाव

इस पेचीदगी को बढ़ावा इस बात से मिला कि मुस्लिम पर्सनल लॉ से

---

1. यह बिल एक 'मुसलमान' ही ने पेश किया था और मुसलमानों के सर्वसम्मत विरोध के परिणामस्वरूप अस्थायी रूप से वापस ले लिया गया।

सम्बन्धित मुक़द्दमों का फ़ैसला करने के लिए अलग से अदालतें न थीं,[1] न उन के लिए सेशन जजों की नियुक्ति होती थी जो इस्लाम पर विश्वास और मुस्लिम पर्सनल लॉ के मूल स्रोत — क़ुरआन, हदीस, इज्माअ और क़ियास — में गहरी नज़र रखते हों। प्रारंभ में इस प्रकार की व्यवस्था थी जो बाद में समाप्त कर दी गई। इन मुक़द्दमों का फ़ैसला करने के लिए वही साधारण अदालतें थीं — तथा वही आम जज जो इस्लामी क़ानून में दक्ष होने के बजाए वास्तव में अँग्रेज़ी क़ानून में दक्ष थे और इसी कारण वे इस्लामी क़ानून को पाश्चात्य क़ानून की ऐनक से देखने पर मजबूर थे। अँग्रेज़ी क़ानून के दबाव तथा इस्लामी क़ानून में दक्षता न रखनेवाले जजों के फ़ैसलों ने मुस्लिम लॉ का रूप बिगाड़कर रख दिया, और अब इस विकृत मुस्लिम लॉ ही का नाम "मुहम्मडन लॉ" है।

नया संविधान

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् नया संविधान बना। यह संविधान अपने साथ नए विचार तथा उन विचारों से सम्बन्धित कितनी ही छिपी हुई अप्रधान बातें लेकर आया। बहुत से नए क़ानून बने।[2] स्वयं संविधान में कई बुनियादी संशोधन हुए। इन सबकी चोट किसी न किसी रूप से मुस्लिम पर्सनल लॉ पर पड़ती रही।[3] इस प्रकार और अधिक पेचीदगियाँ बढ़ती ही गईं और इस जटिल परिस्थिति का परिणाम यह निकला कि मुस्लिम पर्सनल लॉ की नई-नई व्याख्याएँ होती चली गईं। इसका क्षेत्र तंग होता गया और उसकी

---

1. मुस्लिम पर्सनल लॉ पर भारत के प्रसिद्ध विधिवेत्ता, सर दीन शाह मुल्ला की संक्षिप्त परन्तु प्रमाणिक पुस्तक "Principles of Mohammadan Law' के गहन अध्ययन से यह वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है, अतिरिक्त व्याख्या के लिए उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के फैसलों का अध्ययन करना चाहिए।
2. उदाहरणार्थ स्पेशल मैरिज एक्ट, जिसके तहत एक मुसलमान स्त्री ग़ैर मुस्लिम पुरुष से विवाह कर सकती है। यह विवाह क़ानूनन वैध होगा और जो संतान होगी वह वारिस बनेगी।
3. जैसा कि पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि संविधान के दिशा-निर्देश की धारा 44, में नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बना कर इस की चपेट में पूरे पर्सनल लॉ को ले आने की ओर इशारा किया गया है।

वास्तविक स्प्रिट एवं मूल ढाँचा विकृत हो गया।

इज्तिहाद[1] का अभाव

एक ओर मुहम्मडन लॉ दिन प्रति दिन दोषयुक्त होता जा रहा था दूसरी ओर परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन हो रहा था। इस स्थिति की माँग थी कि उलमा (इस्लामी विद्वान) और क़ानून पर गहरी नज़र रखनेवाले लोग सिर जोड़कर बैठते तथा क़ुरआन, सुन्नत और फ़ुक़्हा (इस्लामी विधिशास्त्रियों) के इज्तिहादों के प्रकाश में पेचीदगियों का समाधान खोजते और यदि मुहम्मडन लॉ के कुछ अंश संशोधन योग्य प्रतीत होते तो क़ुरआन और सुन्नत की रोशनी में इन में संशोधन कर देते । परन्तु उम्मत के उलमा तथा इस्लामी विद्वान व चिंतक इस कर्त्तव्य की अदायगी से सामान्यतः ग़ाफ़िल रहे। अदालतों ने इन पेचीदगियों को नई-नई व्याख़्याओं और क़ानून के नए-नए स्पष्टीकरण द्वारा सुलझाना चाहा परन्तु इससे बजाए सुलझने के गुत्थियाँ और भी उलझती गईं। यहाँ तक कि सरकार को मुस्लिम पर्सनल लॉ प्रकरण को अपने हाथ में लेने और उसमें संशोधन क़रने के लिए आयोग का गठन करने का अवसर मिल गया। इस आयोग में ऐसे लोग शामिल रहे जिन की मुस्लिम पर्सनल लॉ के मूल स्रोत पर न गहरी दृष्टि रही, न ही उनकी इस्लाम में कोई आस्था और यक़ीन था, बल्कि इसके विपरीत वे पाश्चात्य विचारधारा एवं क़ानूनों से अधिक प्रभावित लोग थे। स्पष्ट है कि ऐसे लोगों ने परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न पेचीदगियों को सुलझाना तो दूर मुस्लिम पर्सनत लॉ को और विकृत कर दिया होगा और ऐसा ही किया। मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन के समर्थक लोग प्रायः तथाकथित मुस्लिम सरकारों को प्रमाण में प्रस्तुत करते है कि वहाँ मुस्लिम सरकारों ने मुस्लिम पर्सनल लाँ में संशोधन करके नए क़ानून को लागू किया है। किन्तु ऐसी बातें करनेवालों को ज्ञात होना चाहिए कि तथाकथित मुसलमानों की हुकूमतों के

---

1. इज्तिहाद का अर्थ है कि जब किसी विषय में क़ुरआन और हदीस का आदेश स्पष्ट रुप में न हो तो वहाँ क़ुरआन व हदीस की रोशनी में इस्लामी विद्वानों के अनथक प्रयास द्वारा एक उचित रास्ता निकालना जो इस्लाम की मूल शिक्षाओं से अनुकूलता रखता हो।

आचरण न तो मुस्लिम समाज के लिए आदर्श हैं और न मानदण्ड। ये तो केवल और केवल क़ुरआन में वर्णित ईश्वरीय आदेश एवं पैग़म्बर का आचरण एवं फ़रमान हैं।[1]

मुसलमानों की बे-अमली

इस विषय में एक पेचीदगी मुसलमानों के एक बड़े वर्ग की अपने दीन (धर्म) से अनभिज्ञता और उसके आचरण का उसके अपने दीन (धर्म) के अनुकूल न होना है। उनमें ऐसे लोगों का बाहुल्य है जो दीनी (धार्मिक) और नैतिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। उनके दीनी और नैतिक पिछड़ेपन का एक पक्ष यही है कि एक पत्नी हो या एक से अधिक पत्नियाँ अधिकांश मुसलमान उन्हें वे अधिकार कम ही देते हैं जो इस्लाम ने स्त्रियों को दिए हैं। गिरावट के वास्तविक कारणों पर नज़र न रखनेवाले लोग — जिनमें दुर्भाग्यवश विधिवेत्ता भी शामिल हैं — इस स्थिति से यह निष्कर्ष निकालने लगे कि मुस्लिम समाज में पाई जानेवाली उपरोक्त ख़राबी इस्लाम और मुस्लिम पर्सनल लॉ की देन है। अतः वे मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन एवं काट्-छाँट के सुझाव पेश करने लगे। पश्चिम से प्रभावित वर्ग को हर स्थान पर यही ग़लतफ़हमी हुई या यह कहा जाए कि मुसलमानों का ग़लत रवैया ऐसा पर्दा बन गया जिसने उनकी पश्चिम से प्रभावित मानसिकता को छिपा लिया। हालांकि ये कुपरिणाम इस्लाम से अनभिज्ञ होने तथा उसकी अवज्ञा के कड़वे फल थे और इनका निवारण इस्लाम के ज्ञान तथा उसके अनुपालन की भावना उभार कर ही हो सकता था। बहुपत्नी-विवाह के निषेध तथा पश्चिम के पारिवारिक नियमों के अन्धानुकरण से इन का निवारण सम्भव नहीं, क्योंकि इस निषेधाज्ञा से तथा इन नियमों से ख़ुद पश्चिमी समाज में हल न हो सकनेवाली अनेक पेचीदगियाँ पैदा

---

1. यद्यपि ये सरकारें न इस्लामी हुकूमतें हैं न किसी मुसलमान की नज़रों में इनके फ़ैसले तर्क और प्रमाण की हैसियत रखते हैं, न ये हुकूमतें मुस्लिम अवाम की प्रतिनिधि हैं। न इस प्रकार के संशोधनों को मुस्लिम अवाम और उलमा की स्वीकृति प्राप्त है। न ऐसी अलोकतान्त्रिक और ग़ैर इसलामी हुकूमतों का रवैया भारत के लिए आदर्श बन सकता है।

हो गई हैं और वह अनाचार, अश्लीलता तथा सामाजिक अराजकता का कूड़ेदान बनकर रह गया है।

यह है बहुपत्नी-विवाह के विरोध और मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन व काट-छाँट के प्रयासों की पृष्ठभूमि! इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह समस्या कितनी जटिल है और इसको सुलझाने के लिए कितना संयम, कितनी तत्त्वदर्शिता और कितने अथक प्रयास की आवश्यकता है।

इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण काम यह है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ के विभिन्न पहलुओं की हिकमतें (बारीकियाँ) सर्वसाधारण तथा बुद्धिजीवी वर्ग के सामने इस प्रकार उजागर की जाएँ कि वे इसे बहुमूल्य सम्पत्ति समझें तथा इसमें संशोधन और परिवर्तन की बात सोचने के बजाए इससे लाभान्वित होने के लिए अधिक से अधिक संख्या में आगे बढ़ें। इसी के साथ उन कारणों का निवारण भी आवश्यक है जो मुस्लिम पर्सनल लॉ में संशोधन और काट-छाँट के लिए रास्ता साफ़ कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में हम मुस्लिम पर्सनल लॉ के केवल एक क़ानून– बहुपत्नी-विवाह की अनुमति– पर वार्ता करेंगे और बताएँगे कि इस्लाम ने बहुपत्नी-विवाह की किन सामाजिक, नैतिक एवं व्यावहारिक निहित हितों और दूरदर्शिता — वह भी न्याय की शर्त के साथ तथा केवल चार पत्नियों की सीमित — अनुमति प्रदान की है। इस पुस्तक की वार्ता केवल इसी एक विषय तक सीमित है। आशा है उन लोगों की ग़लतफ़हमियाँ दूर करने में यह पुस्तक सफ़ल होगी जो पर्सनल लॉ के — बहुपत्नी विवाह की अनुमति के प्रति अपने हृदयों में रखते हैं।

●●●●●●●

मूल समस्या

भयावह तस्वीर

आधुनिक शिक्षित वर्ग बहुपत्नी-प्रथा का नक़्शा कुछ इस प्रकार खींचता है कि जैसे एक-एक पुरुष के पास स्त्रियों के समूह-के-समूह हैं, जिन्हें वह कामवासना हेतु अपने पास रखे हुए हैं। वह उन स्त्रियों के अधिकारों को पूरा करने में रुचि नहीं रखता और उनसे पैदा होने वाली भीड़-की-भीड़ सन्तान का क्या बनेगा, इस से भी उसे कोई सरोकार नहीं है। उसे तो केवल दो ही काम करने हैं, एक स्त्रियों को अपने चारों ओर एकत्र रखना, रात-दिन भोग-विलास तथा ऐशो-मस्ती में काटना। इस नक़्शे में रंग भरने के लिए विलासी नवाबों तथा वासनाओं के रसिया नरेशों को प्रस्तुत किया जाता है कि अमुक तथा अमुक नरेशों के अन्तःपुर में कई-कई सौ बल्कि कई-कई हज़ार पत्नियां थीं।[1] कहा जाता है कि ये नरेश अपनी प्रत्येक पत्नी के साथ जीवन में एक ही रात सहवास करते तथा अगले दिन नई पत्नी के पास सुहागरात मनाने पहुँच जाते। यह नक़्शा निस्सन्देह बड़ा दर्दनाक और भयानक है परन्तु इसका बहुपत्नी-विवाह प्रथा की सशर्त एवं सीमित अनुमति से क्या सम्बन्ध है? ये तो साम्राज्यवाद एवं बादशाहत तथा ऐयाशी के चमत्कार हैं। निरंकुश राजाओं का वास्तव में न तो कोई धर्म होता है — चाहे वे कितने ही बड़े धर्मात्मा होने का दावा करें — और न वे असीम इच्छाओं के अतिरिक्त किसी नैतिक नियम के पाबन्द होते हैं। बहुपत्नी का नियम हो अथवा एक पत्नी-विवाह का नियम, उनकी इच्छाओं के समक्ष सब तुच्छ हैं। उनके विचार तो मानो ये होते हैं —

"बाबर बऐशकोश के आलम दोबारा नीस्त"

अर्थात् "जितना भी ऐश करना है कर लो, क्योंकि यह दुनिया दोबारा नहीं मिलेगी।"

---

1. उदाहरणार्थ अफ्रीक़ा के एक देश 'उगाण्डा' के एक नरेश तथा दूसरे देश 'लाँगू' के नरेश की सात हज़ार पत्नियाँ थीं। यह इस मामले का सबसे बड़ा रिकार्ड है। (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग-18, शब्द Polygyny, संस्क. 1959 ई.)

अय्याशी और कामवासना

वास्तविकता यह है कि अय्याशी और मात्र कामवासना की प्रबल कामना का बहुपत्नी-विवाह की अनुमति से कोई सम्बन्ध नहीं है। जहाँ तक निरंकुश शासकों का मामला है वे समस्त क़ानून तोड़कर भोगविलास की रंगीन तथा आनन्दपूर्ण महफ़िलें हर समय सजा सकते हैं और सजाते ही रहे। अन्य लोगों का मामला यह है कि यदि उनके हृदय में ख़ुदा या परमेश्वर का ख़ौफ़ नहीं है तथा उनपर कामदेव का आधिपत्य हो जाए तो वे बहुपत्नी-विवाह के विधिवत निषिद्ध होने के वावजूद अन्य स्त्रियों से स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध बना सकते हैं, रखैलों को घर में रख सकते हैं, अथवा पुरानी पत्नियों को छोड़कर तथा तलाक़ दे-देकर नई-नई स्त्रियों से अपने रंगभवनों को आबाद कर सकते हैं। इसका प्रज्जवलंत उदाहरण है पश्चिम जगत जहाँ बहुपत्नी विवाह के क़ानूनन निषिद्ध होने के उपरांत भी यह सब हो रहा है।

नैतिकता के विषय में इस्लाम का दृष्टिकोण

अय्याशी और कामवासना की अनुमति का आरोप उन धर्मों तथा सभ्यताओं पर तो लगाया जा सकता है जिन्होंने किसी पाबन्दी एवं शर्त के बिना बहुपत्नी-विवाह की इजाज़त दी है परन्तु इस्लाम पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता, जिसने अधिक-से-अधिक चार स्त्रियों से विवाह की अनुमति दी है और वह भी इतनी कठोर शर्त के साथ कि सबके साथ न्याय एवं इंसाफ़ की नीति अपनाई जाए।[1] इतना ही नहीं वरन् इस्लाम ने लैंगिक तथा पारिवारिक जीवन सहित पूरे मानव-जीवन की बुनियाद ईशपरायणता, न्याय, लज्जा तथा

---

1. इस्लाम संसार का एक मात्र धर्म है जो स्पष्ट शब्दों में बहुपत्नी-विवाह को सीमित करता और एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने वालों को इसका पाबंद करता है कि वह उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करे और यदि वह न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकता तो आदेश देता है कि वह एक विवाह पर ही संतोष करे और बहुपत्नी-विवाह करनेवालों को न्याय का पाबन्द करता है। इस सीमितता तथा कठोर पाबन्दी से कोई बड़े-से-बड़ा शासक भी स्वतन्त्र नहीं है। दुनिया के अन्य धर्म बहुपत्नी विवाह की स्पष्ट या अस्पष्ट अनुमति तो देते हैं परन्तु उस पर कोई सीमा या शर्त नहीं लगाते।

उच्च नैतिकता पर रखी है। इस्लाम दुनिया की सुख-सामग्री को तुच्छ एवं नाशवान बताता है, आख़िरत (परलोक) की सफलता को मानव का एकमात्र लक्ष्य ठहराता है तथा आख़िरत की सफलता के लिए ईशपरायणता और पवित्र आचरण को बुनियादी शर्त ठहराता है। क़ुरआन में है :

> "कह दो : दुनिया की पूँजी थोड़ी है (इसके मुक़ाबले में) आख़िरत ऐसे व्यक्ति के लिए ज़्यादा अच्छी है जो ख़ुदा का डर रखता हो, और तुम्हारे साथ तनिक भी अन्याय न किया जाएगा।"
>
> (क़ुरआन, 4:77)

> "निश्चय ही सफलता पाई ईमानवालों ने जो अपनी नमाज़ में विनम्रता अपनाते हैं, ... और जो अपनी शर्मगाहों (गुप्तांगों) की रक्षा करते हैं। (अर्थात् पवित्र आचरण अपनाते हैं।)" (क़ुरआन, 23:1,2,5)

क़ुरआन की इन आयतों की व्याख्या इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने इस प्रकार की है :

> "जो व्यक्ति मुझे अपनी ज़बान और अपनी शर्मगाह को (ख़ुदा की नाफ़रमानी से सुरक्षित रखने) की ज़मानत दे, मैं उसके लिए जन्नत की ज़मानत देता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस्लाम उन स्त्रियों और पुरुषों पर लानत करता है और उन्हें परमेश्वर की अनुकम्पा से वंचित ठहराता है जो नित नए यौन-सुख के चक्कर में रहते हैं, चाहे यह काम क़ानून की सीमा को तोड़े बिना ही किया जा रहा हो। पैग़म्बर (सल्ल.) ने फ़रमाया :

> "ख़ुदा ने उन पुरुषों एवं स्त्रियों पर लानत की है जो नए-नए लैंगिक आनन्द लेते और कामवासना का मज़ा चखते फिरते हैं।" (हदीस)

वास्तव में यहाँ प्रश्न अय्याशी की अनुमति का नहीं है, बल्कि प्रश्न केवल यह है कि क्या एक से अधिक स्त्रियों से — जिन की संख्या इस्लाम में अधिक-से-अधिक चार हो सकती है — विवाह करना हर दशा में अवैध

तथा क़ानूनी एवं नैतिक अपराध है और क्या यह काम समाज के लिए विनाशकारी है ? यदि उत्तर स्वीकारात्मक है तो इसके तर्क बताए जाएँ। और यदि उत्तर नकारात्मक है तो उन आपत्तियों का क्या जवाब है जो वर्तमान्[1] पाश्चात्य सभ्यता की ओर से बहुपत्नी-विवाह पर की जाती हैं।

बहुपत्नी तथा एक पत्नी-विवाह प्रथा

कुछ लोग बहुपत्नी विवाह एवं एक पत्नी विवाह की तुलना करते समय यह सिद्ध करने पर एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देते हैं कि एक पत्नी विवाह की प्रथा बहुपत्नी विवाह की प्रथा से अधिक उत्तम, सभ्यतापूर्ण एवं विकसित है। पश्चिमी जगत के लेखक प्राय: ऐसी ही नीति अपनाते हैं, यद्यपि स्वयं उनके यहाँ अब तक यह बात निश्चित नहीं हो सकी है कि एक पत्नी-प्रथा हर दशा में बहुपत्नी-प्रथा से उत्तम है। पश्चिम में आज भी ऐसे चिन्तक एवं विचारक मौजूद हैं जो बहुपत्नी-प्रथा को एक पत्नी-प्रथा से उत्तम तथा अधिक प्राकृतिक मानते हैं।[2]

बहुपत्नी-विवाह की अनुज्ञा अथवा निषेध

प्रश्न वास्तव में यह नहीं है कि एक पत्नी-विवाह प्रथा उत्तम है अथवा बहुपत्नी-विवाह प्रथा — हो सकता है कि एक पत्नी-विवाह प्रथा ही उत्तम हो अथवा कुछ परिस्थितियों में बहुपत्नी-विवाह[3] प्रथा उत्तम हो — प्रश्न केवल

---

1. तीन सौ वर्ष पूर्व-तक अन्य सभ्यताओं की तरह पाश्चात्य सभ्यता भी बहुपत्नी-विवाह को जाइज़ और सही समझती थी। (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-18, शब्द Polygyny.)
2. यौन मनोविज्ञान के सुप्रसिद्ध ज्ञाता हैवीलॉक ऐलिस (Havelock Ellis) ने, जो एक पत्नी विवाह को बहुपत्नी-विवाह से उत्तम ठहराते हैं, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Studies in the Psychology of sex" में आधुनिक युग के कई पाश्चात्य लेखकों का नाम लिया है जो बहुपत्नी विवाह का ज़ोरदार समर्थन करते हैं और उसे एक पत्नी विवाह के मुक़ाबले में उत्तम, उच्च तथा प्रकृति से अधिक निकट समझते हैं। (Vol. II, Part III P.P.497-502)
3. हम इस अन्तिम राय को सही मानते हैं, पुस्तक के आगामी अध्यायों से इस राय की सच्चाई सामने आ सकेगी।

यह है कि एक पत्नी-विवाह के आम प्रचलन के साथ-साथ क्या बहुपत्नी-विवाह की प्रथा को भी शेष रहने दिया जाए या इसे (अर्थात बहुपत्नी प्रथा को) क़ानून द्वारा निषिद्ध घोषित कर दिया जाए ? उत्तर यदि क़ानूनी निषेध के पक्ष में है तो इसके लिए यह तर्क बिल्कुल निरर्थक हो जाता है कि एक पत्नी-प्रथा बहुपत्नी-प्रथा से उत्तम है। समाज में क़ानून की भूमिका यह नहीं है कि वह केवल उत्तम तथा आदर्श तरीक़ों को जाइज़ ठहराता हो तथा शेष तरीक़ों को, जो निम्न स्तर के हों, नाजाइज़ ठहराता हो। क़ानून आदर्श (Ideal) व्यक्तियों के लिए नहीं वरन् आम ज़नता के लिए बनता है और आम जनता से आप आदर्श व्यवहार की आशा कभी नहीं कर सकते। समाज का बहु जनसाधारण आयामी विकास आवश्यकता की पूर्ति तथा समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों और व्यक्तियों के साथ न्याय इस बात पर निर्भर है कि क़ानून में जनसाधारण की सहनशक्ति तथा दुर्बलताओं का ध्यान रखा जाए। और आम व आदर्शपूर्ण तरीक़ों के साथ-साथ निम्न स्तर के तरीक़ों को भी क़ानूनन वैध रखा जाए और पाश्चात्य क़ानून सहित दुनिया के हर क़ानून का ढाँचा इसी नीति के अधीन निर्मित होता है।

जो लोग बहुपत्नी-विवाह के क़ानून द्वारा निषेध के पक्ष में हैं उन्हें स्पष्ट रूप से यह बताना चाहिए कि सीमित तथा सशर्त बहु-पत्नी विवाह जिसकी अनुज्ञा इस्लाम ने दी है— से कौन-कौन सी ख़राबियाँ पैदा होती हैं। वे यह भी सिद्ध करें कि बहुपत्नी-विवाह के निषेध से क्या उन तथाकथित बुराइयों का उन्मूलन हो जाएगा? और क्या इससे नई बुराइयाँ जन्म न लेंगी। इसके विपरीत जो लोग बहुपत्नी-विवाह की सीमित तथा सशर्त अनुज्ञा के पक्ष में हैं उन्हें अपने तर्क प्रस्तुत करने चाहिएँ कि उनके पास निषेध के पक्षधरों के विरुद्ध क्या उत्तर हैं और इसके निषिद्ध ठहराए जाने से कौन-कौन सी बुराइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं ?

आगामी पृष्ठों में हम सविस्तार बताएँगे कि बहुपत्नी-विवाह की सशर्त एवं सीमित अनुमति के क्या कारण हैं ? साथ ही उन तर्कों की समीक्षा भी प्रस्तुत करेंगे जो निषेध के पक्षधरों की ओर से दिए जाते हैं।

प्रकृति की गवाही

वर्तमान युग के विचारक मानव-समस्याओं के विषय में प्रकृति तथा प्राकृतिक रुझानों को बुनियादी महत्व देते हैं। जो चीज़ प्राकृतिक रुझनों एवं प्रवृत्ति के विरुद्ध है, निस्संकोच्च रद्द किए जाने योग्य है। इस्लाम भी अपनी व्यवस्था की बुनियाद मानव-प्रकृति पर रखता है। क़ुरआन में है :

> "वही ख़ुदा की (बनाई हुई) प्रकृति है जिसपर उसने इंसान की रचना की है! ख़ुदा की सृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं होने का। यही ठीक 'दीन' (धर्म) है" (क़ुरआन, 30:30)

पश्चिमवालों के निकट प्रकृति से अभिप्रेत वास्तव में हैवानी प्रकृति होती है।[1] वे हैवानों के जीवन का सविस्तार तथा गहन अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन से वे पूर्ण निष्कर्ष निकालने की कोशिश करते हैं, फिर उन्हें मानव-जीवन पर लागू करते हैं। यौन-शास्त्र में तो विशेष रूप से वे हैवानी प्रकृति ही से रहनुमाई प्राप्त करते हैं — सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से यौन-सम्बन्ध के मामले में इंसान और हैवान में समरूपता भी पाई जाती है — पति-पत्नी सम्बन्ध, एक पत्नी-विवाह, बहुपत्नी-विवाह, परिवार तथा अन्य लैंगिक तथा पारिवारिक समस्याओं पर पाश्चात्य लेखकों ने हैवानी प्रकृति के प्रकाश में वार्ता की है। डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त (Theory of Evolution) को भौतिक विज्ञान (Physics) में सही स्वीकार कर लेने और फिर इस विशुद्ध

1. इस्लाम इंसान के बारे में हैवानी (पाशविक) प्रकृति को नहीं वरन् इंसानी प्रकृति को ही महत्व देता है। इसके बावजूद हमने हैवानी प्रकृति को गवाही में प्रस्तुत किया है। इसका कारण यह है कि बहुपत्नी विवाह के विरोधी पाश्चात्य विचारक और उनके पूर्वी अनुयायी हैवानी प्रकृति से गवाही पेश करते हैं। उनका विचार है कि हैवानी प्रकृति बहुपत्नी-विवाह के पक्ष में नहीं, एक पत्नी विवाह के पक्ष में है। परन्तु विशेषज्ञों के बयानों से आपको अन्दाज़ा होगा कि यह बात सही नहीं है।

भौतिक सिद्धान्त को इंसान के सामाजिक जीवन (Social Life) तथा सामाजिक विज्ञान (Social Sciences) पर लागू करने के पश्चात् वार्ता का यह तरीक़ा स्वतः ही निश्चित हो जाता है। जब हैवान ही हमारे पूर्वज हैं और हमारी रगों में उन्ही का ख़ून दौड़ रहा है तो हमें हर मामले में हैवानी ज़िन्दगी ही से मार्गदर्शन लेना चाहिए।[1] तो आइए! पश्चिमवालों की इस सर्वमान्य कसौटी पर बहुपत्नी-विवाह के प्रकरण को परखें।

हैवानों की प्रकृति

मानवशास्त्र (Anthropology)[2] के प्रसिद्ध विशेषज्ञ लैटयूरन्यू (Letoourneau) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Evolution of Marriage and Family" (विवाह-सम्बन्ध एवं परिवार का विकास)[3] में "Marriage and Family amongst animals' (हैवानों में विवाह सम्बन्ध तथा हैवानों का खानदान) शीर्षक के तहत हैवानों के यौन सम्बान्धों के विभिन्न रूपों पर सविस्तार प्रकाश डाला है (पृष्ठ 20 से 36 तक)। यहाँ हम उसके कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं –

> ‘‘परन्तु यह बात विशेषरूप से चिड़ियों और दूध पिलानेवाले जानवरों में है कि हम उनमें आपसी मेल-जोल और सम्बन्ध के ऐसे रूप पाते हैं जो इंसानी विवाह- सम्बन्धों तथा ख़ानदान से बहुत

---

1. इस्लाम डार्विन के सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करता है। न यह सिद्धान्त ज्ञान तथा विज्ञान द्वारा सिद्ध किया जा सका है।
2. मानव-शरीर-रचना सिद्धान्त हैवान की हैसियत से।
3. हमारे सामने पुस्तक का तीसरा अंग्रेज़ी संस्करण है। पुस्तक के महत्व का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि साम्यवाद के महान सदस्य तथा कार्ल मार्क्स के दाहिने हाथ फ्रेड्रिक ऐंगिल्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘‘परिवार, निजी स्वामित्व एवं राज्य का प्रारम्भ’’ में इस से लाभ उठाया है। लेखक एक पत्नी-विवाह के पक्षधर हैं तथा बहुपत्नी-विवाह तथा स्त्रियों के सम्बन्ध में इस्लामी शिक्षाओं के कटु आलोचक। देखें वर्णित पुस्तक का शीर्षक Arabian Polygamy (अरबों का बहुपत्नी-विवाह)। लेखक ने इन नौ पृष्ठों में इस्लामी शिक्षाओं को विकृत करके बड़े घिनावने ढंग से पेश किया है।

मिलते-जुलते हैं .... इंसानों की भाँति चिड़ियाँ भी कुछ मौक़ों पर उन्मुक्त यौन सम्बन्धों (Promiscuity) को अपनाती हैं।[1] कभी एक पत्नी प्रथा को, कभी बहुपत्नी प्रथा को। जंगली बत्तख़ जो जंगल में एकपत्नीत्व का कठोरता से पालन करती है परन्तु पालतू हो जाने पर बहुपत्नीत्व की बहुत अधिक आदी हो जाती है तथा यही दशा Guinea fowl की भी है।'' (पृष्ठ 25)

''पक्षियों की अन्य किस्में जिन्होंने मिले-जुले यौन-सम्बन्धों को त्याग दिया है, अब तक बहुपत्नीत्व पर जमी हुई हैं। गैलीनेसे (Gallinaces) यौन- सम्बन्धों के इस रूप (बहुपत्नीत्व) को बहुत पसन्द करता है — वह रूप जो इंसानों में बहुत ज़्यादा प्रचलित है और इस समय भी जब कि इंसानियत बहुत अधिक सभ्य हो गई है और वह एक पत्नी-प्रथा पर कार्यान्वित होने की डींगें मारती है[2] — हमारे खलियान के द्वार पर रहनेवाला मुर्ग़ घमण्डी, ऐयाश, वीर, ईर्ष्यालु तथा बहुपत्नीत्व की आदत रखनेवाले पक्षी का ज्वलंत उदाहरण है।'' (पृ.26)

''परन्तु जहाँ तक बहुपत्नी प्रथा का सम्बन्ध है इसका मामला बिल्कुल भिन्न है। वह दूध पिलानेवाले जानवरों में बहुत आम है, विशेष रूप से उन जानवरों में जो सोशल हैं और समूह बनाकर रहते हैं।'' (पृ. 31)

''बन्दरों की आदतें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ एक पत्नी-प्रथा पर चलते हैं, कुछ बहुपत्नी-प्रथा पर .... इंसान के

---

1. स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को लेखक ने प्रारंभिक तथा निम्न स्तर की चीज़ सिद्ध किया है जबकि एंगिल्स ने बिना किसी तर्क के इसका खण्डन किया है। (देखें, परिवार निजी स्वामित्व तथा राज्य का प्रारम्भ' पृ. 58)
2. लेखक का अभिप्राय यह है कि यद्यपि अनेक लोग क़ानूनन एक पत्नी-प्रथा अपनाए हुए हैं परन्तु स्वच्छंद यौन सम्बन्ध क़ायम करने के कारण वास्तव में वे बहुपत्नी-प्रथा पर ही चल रहे हैं। यह बात लेखक के स्पष्ट शब्दों में आगे आ रही है।

सगे चचेरे भाई, इंसानों जैसे लंगूर[1] कभी एक पत्नी प्रथा पर चलते हैं, कभी बहुपत्नी प्रथा पर। जंगली लोग हमसे कहते हैं कि गोरिल्ला जीना (Gorilla gina) वनमानुष की एक क़िस्म है जो छोटे-छोटे समूह बनाता है। हर समूह में बालिग़ नर एक ही होता है और वह अनेक मादाओं तथा बच्चों का स्वतंत्र शासक होता है। चिम्पांज़ी (Chimpanzi) वनमानुष की एक और जाति है। यह कभी बहुपत्नीत्व का आदी होता है कभी एक पत्नीत्व का।''

(पृ. 33)

''यह बात भी महत्वपूर्ण एवं ध्यान देने योग्य है कि जानवरों में लैंगिक मेल-जोल का तरीक़ा किसी विशेष उलझन के बिना बदल सकता है। जानवरों की कोई भी नस्ल अनिवार्य एवं स्थायी रूप से किसी एक लैंगिक तरीक़े पर निर्भर नहीं करती, एक जानवर जो एक पत्नीवाले वर्ग से सम्बन्धित हो, बड़ी सरलता से बहुपत्नी प्रथा को अपना लेता है। सारांश यह कि एक जाति के मानसिक स्तर और उसकी लैंगिक आदतों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता।'' (पृ. 36)

इन उद्धरणों से निम्नलिखित बातें सामने आती हैं –

(1) जानवरों में एक पत्नी का भी प्रचलन है तथा बहुपत्नी का भी।

(2) जो जानवर सोशल हैं और मिल-जुलकर रहते हैं, उनमें बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन आम है।

(3) जंगली जीवन में कुछ जानवर एक पत्नी प्रथा के आदी होते हैं परन्तु नागरिक जीवन अपना लेने के पश्चात् बहुपत्नी-प्रथा अपना लेते हैं। मानो सभ्य जीवन से बहुपत्नी-प्रथा निकटतम है।

(4) जो जानवर इंसान से मिलते-जुलते एवं निकटतम हैं, उनमें बहुपत्नी का भी प्रचलन है और एक पत्नीत्व का भी। परन्तु इनमें से कुछ

1. Anthropoid Ape एक लंगूर जो इंसान से बहुत मिलता-जुलता होता है।

जातियाँ केवल बहुपत्नी प्रथा की आदी हैं।

(5) बहुपत्नीत्व का तरीक़ा हो या एक पत्नीत्व का, कोई भी नस्ल अनिवार्य एवं स्थायी रूप से किसी एक तरीक़े की पाबन्द नहीं होती।

(6) जानवरों के मानसिक स्तर और उनके लैंगिक मेल-जोल की रीति के बीच कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। मानसिक रूप से अधिक पिछड़ी नस्लों में एक पत्नीत्व का प्रचलन पाया जाता है और ऊँची और बड़ी नस्लों में बहुपत्नीत्व का।

इन बातों को यदि इंसानी जीवन पर लागू किया जाए तो निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

(1) यह बात ठीक प्रकृति के अनुसार है कि इंसानों में एक पत्नी-प्रथा के साथ बहुपत्नी-प्रथा का भी प्रचलन हो।

(2) इंसान एक सामाजिक प्राणी है, क्योंकि वह मिल-जुलकर रहता है, अतः उसकी प्रवृत्ति बहुपत्नी-विवाह की ओर होना एक स्वाभाविक बात है।

(3) कोई व्यक्ति एक पत्नी प्रथा को छोड़कर बहुपत्नी-प्रथा को अपनाए या बहुपत्नी-प्रथा को छोड़कर एक पत्नी-प्रथा को अपनाए, तो इनमें से कोई चीज़ भी अस्वाभाविक नहीं है।

(4) बहुपत्नीत्व प्रथा किसी भी दृष्टि से मानसिक एवं सांस्कृतिक पिछड़ेपन का प्रमाण नहीं है।

ये निष्कर्ष इतने स्पष्ट हैं कि लेखक ने एक पत्नीत्व प्रथा का समर्थक होने के बावजूद बहुपत्नी-प्रथा (Polygamy) पर बहस की शुरुआत इन शब्दों से की है –

‘‘हम देख चुके हैं कि हैवानों की नस्लों में कुछ वर्ग कभी एक पत्नी वाले होते हैं तो कुछ बहुपत्नीत्व वाले। परन्तु सामान्य रूप से समष्टीय जीवन, जो मिल-जुलकर रहनेवाला जीवन है, बहुपत्नी-प्रथा का समर्थक है। इंसान निश्चय ही हैवानों में सबसे अधिक

मिलनसार तथा सोशल है, इसी लिए वह बहुपत्नी प्रथा की ओर अत्यधिक आकर्षित है। इंसान जैसे उन बड़े लंगूरों की तरह, जिनके साथ हमारे प्राचीन पूर्वज निश्चय ही एक से अधिक समरूपता रखते होंगे।" (पृष्ठ - 123)

मानव-प्रकृति

इस उद्धरण से एक और बात यह सामने आई कि – हैवानों से हटकर – इंसान स्वयं प्राकृतिक रूप से बहुपत्नी-विवाह की ओर अधिक आकृर्षित है। लेखक एक पत्नी-प्रथा की चर्चा करते हुए स्पष्ट शब्दों में इस तथ्य को स्वीकारता है –

"पुरुष स्वाभाविक रूप से बहुपत्नी-विवाह का अभिलाषी है, परन्तु वह सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के आगे झुकने पर बाध्य कर दिया जाता है।" (पृष्ठ - 173)

लार्ड मोरले (Morley) का विचार भी यही है कि "पुरुष स्वभावतः बहुपत्नित्व की प्रवृत्ति रखता है।" परन्तु ह्यूलॉक ऐलियस इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। वह मोरले का मत उद्धृत करने के पश्चात् लिखता है :

"यदि हम इस दृष्टिकोण की व्याख्या इस प्रकार करें कि पुरुष स्वाभाविक रूप से तो एक पत्नीवाला प्राणी है परन्तु इसी के साथ वह लैंगिक रूप से विविधता की स्थायी आकांक्षा रखता है, तो इसके समर्थन में अनेक प्रमाण हैं।" (Studies in the Psychology of Sex, Vol, II. Part III. P. 496.)

इस दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष निकलता है कि पुरुष अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ चाहता है। सेक्स मनोविज्ञान के एक विशेषज्ञ की ओर से बहुपत्नी-विवाह प्रथा के स्वाभाविक एवं प्राकृतिक होने की यह अप्रत्यक्ष स्वीकृति है।[1]

---

1. ह्यूलॉक ऐलियस ने स्पष्ट शब्दों में इस बात को स्वीकार किया है कि लैंगिक विविधता की सबसे अधिक प्रचलित तथा जीवन वर्धक बुनियादें रखनेवाली शक्ल बहुपत्नी-विवाह है। (उल्लिखित पुस्तक पृ. 491) सविस्तार, उद्धरण आगे आएगा। लैंगिक

जॉर्ज रेले स्काट, जो यौन-शास्त्र में पूर्णतः दक्ष माना जाता है, कहता है:

"पुरुष बुनियादी तौर से बहुपत्नीत्व की रुचि रखता है तथा सभ्यता का विकास इस स्वाभाविक बहुपत्नी प्रथा को और बढ़ा देता है।" (History of prostitution P, 21)

ब्रिटेन का प्रसिद्ध स्वतन्त्र विचारोंवाला दार्शनिक बरट्रेन्ड रसेल (Bertrand Russell) अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Marriage and Morals' (विवाह तथा नैतिकता) में स्पष्ट लिखता है :-

"मेरा ख़याल है कि स्वतन्त्र सभ्य लोग भी — स्त्री हों या पुरुष — स्वभाव की दृष्टि से बहुविवाह का रुझान रखते हैं। वे किसी व्यक्ति के प्रेम में कुछ वर्षों के लिए डूब तो सकते हैं और पूरी तरह डूब भी जाते हैं, परन्तु लैंगिक एकसुरापन (Monotony) शीघ्र या देर से, प्रेम की तीव्रता को कम कर देती है तथा पुराने आवेग को जीवित करने के लिए वे किसी अन्य की ओर देखने लगते हैं। निस्सन्देह नैतिकता की सुरक्षा के लिए इस भावना पर क़ाबू पाना सम्भव है परन्तु यह बहुत कठिन है कि इस भावना को किसी प्रकार पैदा ही न होने दिया जाए। स्त्री की स्वतन्त्रता के विकास के साथ लैंगिक बेवफ़ाई के अवसर उससे कहीं अधिक – बहुत अधिक बढ़ गए हैं, जितने पुराने ज़मानों में होते थे। अवसर विचारों को बढ़ाते हैं, विचार इच्छाओं को बढ़ाते हैं। धार्मिक दृष्टि से संकोच के अभाव में, इच्छाएँ क्रिया को बढ़ावा देती हैं।" (पृ. 139)

डा. रोम लैन्डो (Rom Landoau) इससे अधिक स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में कहता है :-

"एक अपूर्ण संसार में, जिस प्रकार के संसार में हम रहते हैं, बहुपत्नी विवाह को स्वाभाविक रूप से वैध मानना पड़ेगा। बहुपत्नी-विवाह को पूरी तरह समाप्त कर देने के लिए हमें सबसे पहले पूरी सभ्यता के चरित्र को बदलना पड़ेगा, फिर पुरुष की प्रकृति को और सबके अन्त में स्वयं प्रकृति को।" (Sex, Life and Faith, P.186)

विविधता का अर्थ यह है कि इंसान नए-नए लैंगिक अनुभव करना चाहता है।

बहुपत्नी-विवाह : एक वैश्विक प्रथा

बहुपत्नी-विवाह की ओर पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण ही का यह परिणाम है कि इसका प्रचलन हर काल, हर सभ्यता तथा हर क़ौम में रहा है। भारतीय संस्कृति ग्रंथों और इतिहास से भी इसका प्रमाण मिलता है कि बहुपत्नी-विवाह भारतीय सभ्यता का एक अभिन्न अंग रहा है। इस लिए इस बात को एक पत्नी-विवाह के पक्षधर भी मानते हैं जो बहुपत्नी-विवाह की तुलना में एक पत्नी-विवाह को ही महत्व देते हैं।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-14 में Marriage (विवाह) के मुख्य शीर्षक के तहत Polygyny (बहुपत्नी-विवाह) का उपशीर्षक लगाकर लिखा है :

> "एक प्रथा की हैसियत से बहुपत्नी-विवाह संसार के समस्त क्षेत्रों में पाया जाता है। प्राचीन क़बीलों में ऐसे क़बीले बहुत कम हैं जिनके विषय में हमें यह बताया गया हो कि उनमें पुरुष को सामर्थ्य होते हुए भी एक से अधिक वैवाहिक सम्बधों की अनुमति नहीं दी गई है। बहुत-से लोगों के बारे में कहा जाता है कि वे एक पत्नीवाले थे, परन्तु जो सामग्री हमारे हाथों में है उससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि एक पत्नी-विवाह एक प्रचलित तरीक़ा, एक नैतिक आदर्श और एक ऐसा क़ानून रहा हो जिसकी सुरक्षा स्वीकृति (Sanctions) द्वारा की गई हो।" (पृ. 949 संस्क. 1959 ई.)

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-18 में Polygyny (बहुपत्नी-विवाह) ही के शीर्षक के तहत और अधिक विवरण मिलता है। जैसे कम सभ्य समुदाय (Lower Cultured Groups) के उपशीर्षक के तहत लिखा है :

> "असभ्य नस्लों, जैसे शिकार पर जीवन-यापन करनेवाले पिछड़े क़बीले (Lower Hunters) और भोजन की तलाश में फिरनेवाले

गिरोहों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन बड़े पैमाने पर महसूस नहीं होता सिवाय कुछ आस्ट्रेलियाई और झाड़ियों में जीवन बितानेवाले क़बीलों के। इसी प्रकार प्रारंभिक किसानों के समुदायों और कम-से-कम उनमें से अधिक असभ्य गिरोहों में बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन बड़े पैमाने पर नहीं हैं .... शिकार पर गुज़ारा करनेवाले ऊँचे गिरोहों (Higher Hunters) में बहुपत्नी-विवाह प्रथा का अधिक प्रचलन पाया जाता था। रेवड़वाले चरवाहों में एक भी ऐसा न था जो एक पत्नी-प्रथा पर दृढ़ता पूर्वक चलता हो। शिकार पर गुज़ारा करनेवालों तथा प्रारंभिक किसान क़बीलों के मुक़ाबले में ऊँचे किसानों (Higher Agriculturists) में बहुपत्नी विवाह प्रथा का प्रचलन अधिक पाया जाता है। .... ऐसी मिसालें जिनमें बहुपत्नी-विवाह का प्रतिनिधित्व सामान्य नियम की हैसियत से किया गया हो, तुलनात्मक रूप से अफ़्रीक़ावासियों में अपेक्षाकृत बहुत अधिक हैं। .... बहुपत्नी-विवाह प्रथा अफ़्रीक़ा में अपनी चरम सीमा पर है, सामान्यता के पहलू से भी तथा पत्नियों की संख्या की दृष्टि से भी।'' (पृ.186)

इस उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक यह कि बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन थोड़ा-बहुत असभ्य क़ौमों में भी था। दूसरी बात यह कि इंसान का क़दम जैसे-जैसे सभ्यता की ओर बढ़ता गया, वैसे-वैसे बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन भी बढ़ता गया।

यह तो असभ्य या कम सभ्य क़ौमों का हाल था। अब इनसाइ-क्लोपीडिया ब्रिटानिका ही के शब्दों में प्राचीन सभ्यताओं का हाल सुनिए :

''अनेक पत्नियाँ या रखैल स्त्रियाँ रखने का एक रूप जिसे वास्तविक बहुपत्नी-विवाह से बड़ी कठिनाई के साथ भिन्न समझा जा सकता है, प्राचीन सभ्यता के अधिकतर लोगों में पाया गया है। चीन में क़ानूनी पत्नी के अतिरिक्त कुछ अन्य स्त्रियाँ भी पत्नियाँ कहलाई जाती थीं, जो 'अच्छे स्वभाव' के कारण या क़ानूनी रखैलें

होती थीं। जापान में चीनी ढंग की रखैल स्त्रियाँ रखने का प्रचलन क़ानूनी व्यवस्था की हैसियत से 1880 ई. तक मौजूद था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन मिस्र में बहुपत्नी-विवाह की अनुमति तो थी, परन्तु नरेशों के अतिरिक्त आम प्रचलन न था। 'हमूराबी' का बाबिल वाला क़ानून कहता है कि विवाह-सम्बन्ध एक पत्नी-प्रथावाला होना चाहिए। इसके बावजूद वह यह भी स्पष्ट करता है कि यदि किसी पुरुष ने एक स्त्री से विवाह किया और वह रोगग्रस्त हो गई तो वह दूसरी शादी कर सकता है। यदि वह निःसन्तान रह जाए तो रखैल ला सकता है। यहूदियों में एक पुरुष किसी भी दशा में अनेक स्त्रियाँ रख सकता था। इन पत्नियों की क़ानूनी हैसियत में कोई अन्तर न आता था और न स्त्रियों की संख्या के बारे में कोई सीमा थी। अरब में इस्लाम ने यह निश्चित कर दिया था कि एक पुरुष की क़ानूनी पत्नियाँ चार से अधिक न होनी चाहिए। अधिकांश इण्डो-यूरोपियन लोगों में बहुपत्नी-विवाह की अनुमति थी —प्राचीन सीलो और ट्युटनस में, प्राचीन आइरिस और वैदिककाल के हिन्दुस्तानियों में — यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा नरेशों, सरदारों अथवा ऊँचे घरानों के लिए विशिष्ट थी........ इसके विपरीत यूनान में एक पत्नी-विवाह की एक मात्र स्वीकृत प्रथा थी। रखैल स्त्रियाँ रखने का प्रचलन ऐथैंज़ में पाया जाता था, परन्तु यह तरीक़ा विवाह से बिल्कुल भिन्न था तथा रखैलों को कोई हक़ न मिलता था। रोम की सभ्यता में एक पत्नी-विवाह का प्रचलन दृढ़तापूर्वक पाया जाता था तथा विवाहित पुरुषों एवं वेश्याओं के बीच अवैध सम्बन्ध लोकतन्त्र का अन्त होने तक, आम था।"

(पृ. 186)

इस लम्बे उद्धरण से यह वास्तविकता भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन सभ्यताओं में बहुपत्नी-विवाह सामान्यतः वैध था और इसका काफ़ी प्रचलन था। जिन सभ्यताओं ने बहुपत्नी-विवाह को वैधानिक व्यवस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया उनमें रखैल स्त्रियाँ रखने या वेश्यावृत्ति का आम प्रचलन

था और क़ानून इन रखैलों को स्वीकृति और क़ानूनी अधिकार देता था, अथवा कम-से-कम इस प्रचलन को सहन करता था।[1]

यह था प्राचीन सभ्यताओं में बहुपत्नी-विवाह के प्रचलन का विवरण। अब आधुनिक सभ्यता को लीजिए और उसका हाल भी इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ही के पृष्ठों में पढ़िए :

> "बहुपत्नी-विवाह प्रथा मसीही जगत यूरोप में भी पाई गई है। उन देशों में जहाँ मूर्तिपूजा के युग में बहुपत्नी-विवाह प्रथा का प्रचलन था, (मसीही) शासकों की ओर से इसकी राह में बाधाएँ उत्पन्न नहीं की गईं। छटी शताब्दी के मध्य में आयरलैंड के शासक डायरमैट की दो रानियाँ तथा दो रखैल थीं। शासकों में बहुपत्नी-विवाह का आम रिवाज था। शारलीमैन की दो पत्नियाँ और दो रखैल थीं और उसके एक क़ानून से पता चलता है कि बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन पादरियों में भी विद्यमान था। बाद के ज़माने में 'हसा' के 'फ़िलिप' और 'प्रोशिया' के 'फ़्रैड्रिक विलियम' द्वितीय ने लूथर को माननेवाले पादरियों की अनुमति से एक से अधिक विवाह किए। 1960 ई. में वैस्ट फ़िलिया की सन्धि के तुरन्त पश्चात्, जबकि तीस वर्ष के युद्ध के परिणाम स्वरूप (पुरुषों की) जनसंख्या बहुत घट गई थी, फ़्रैंकश रैस्तेग ने 'ज़ंबर्ग, में एक प्रस्ताव पास किया कि अब से प्रत्येक व्यक्ति को दो स्त्रियों से विवाह की अनुमति मिलनी चाहिए। एनाबैप्टिस्ट्स (Anabaptists) और मारमोंस (Mormons) (दो मसीही समुदायों) ने अत्यन्त धार्मिक जोश के साथ बहुपत्नी-विवाह

---

1. जैसा कि ऊपर आ चुका है कि यूनानी और रोमी सभ्यताएँ बहुपत्नी-विवाह को स्वीकृति नहीं देती थीं, परन्तु वे वेश्यावृत्ति एवं रखैल को सहन करती थीं और कभी-कभी तो उन्हें क़ानूनी हैसियत भी दे देती थीं। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का दृष्टिकोण भी ठीक यही है। एक से अधिक नियमित यौन-सम्बन्ध अवैध और अनियमित लैंगिक सम्बन्ध बिना वैध तथा किसी सीमितता के वैध। पाश्चात्य सभ्यता ने यह दृष्टिकोण यूनानी और रोमी तहज़ीबों ही से लिया है।

प्रथा की वकालत की है।"[1]

भाग-18, पृ. 186, 187, शीर्षक: Christians and Modern time] (मसीहियत और नवयुग)

इनसाइक्लोपीडिया भाग-14, में Monogamy (एक पत्नी-विवाह) के शीर्षक से लिखा है :

"एकपत्नी-विवाह प्रथा का दाम्पत्य सम्बन्ध के एकमात्र तथा अपवाद रहित रूप की हैसियत से, इस अर्थ में कि एक से अधिक विवाह करना कठोर दण्डनीय अपराध हो, एक पाप और एक अपवित्रता हो, पाया जाना वास्तव में बहुत ही दुर्लभ है, वैवाहिक सम्बन्ध का ऐसा अपवाद रहित तथा पूर्ण आदर्श और ऐसा बेलोच क़ानूनी दृष्टिकोण पाश्चात्य सभ्यता की नवीनतम तथा अपेक्षाकृत वर्तमान विकसित रूप के अतिरिक्त शायद ही कहीं पाया जाता हो। 'लैटर डे सेंट्स'(Latter Day Saints)[2] के आधुनिक चर्च और एनाबैपटिस्ट्स (Anabaptists) के नास्तिक सम्प्रदाय की असाधारण विचित्रता से हटकर मध्यवर्ती युग में बहुपत्नी-विवाह प्रथा को कलीसा ने स्वीकृति दे दी थी और उसपर क़ानूनी हैसियत से अमल भी होता था। इसके अतिरिक्त कलीसा और राज्य, दोनों की स्वीकृत क़ानूनी-व्यवस्था की हैसियत से बहुपत्नी-विवाह छिन्न-भिन्न रूप में इधर-उधर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक मौजूद था।" (पृ. 950)

इन उद्धरणों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(1) तीन शताब्दी पूर्व तक यूरोप में बहुपत्नी-विवाह की प्रथा थी तथा

---

1. इन दोनों समुदायों ने बहुपत्नी-विवाह का बढ़-चढ़कर समर्थन किया यहाँ तक कि एनाबैपटिज़्म (Anabaptism) और मार्मोनिज़्म (Mormonism) का अर्थ ही बहुपत्नी-विवाह हो गया। और मार्मन (Mormon) का अर्थ बहुपत्नी-विवाहकर्ता का हो गया।
2. यह 'मारमन्स' का ही दूसरा नाम है।

राज्य की ओर से उसे स्वीकृति प्राप्त थी।

(2) बहुपत्नी-विवाह को नैतिक दृष्टि से हराम तथा क़ानूनी पहलू से निषिद्ध ठहराया जाना एक दुर्लभ एवं अनोखी बात है। यह पाश्चात्य सभ्यता के वर्तमान् विकास का परिणाम है।

(3) मसीहियत बहुपत्नी-विवाह के क़ानूनी निषेध के पक्ष में नहीं है। सत्रहवीं शताब्दी तक चर्च ने इसे जाइज़ और सही माना है तथा कुछ मसीही सम्प्रदाय तो बहुपत्नीत्व के ज़ोरदार पक्षधर हैं।

बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन हर दौर, हर क़ौम और हर सभ्यता में रहा है। इसकी तदधिक व्याख्या के लिए लट्यूरन्यू (Letoourneau) की प्रसिद्ध पुस्तक "The Evolution of Marriage" का अध्ययन करना चाहिए। लेखक ने बहु-विवाह (Polygamy) पर 32 पृष्ठों में बहस की है और इसके प्रचलन पर सविस्तार प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ लेखक ने कम सभ्य क़ौमों में बहुपत्नी-विवाह के प्रचलन का सविस्तार उल्लेख इस प्रकार किया है :

> "हम देख चुके हैं कि बहुपत्नी-विवाह की व्यवस्था पूरी दुनिया की कम सभ्य नस्लों में पाई जाती है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सभ्य-से-सभ्य क़ौमों ने भी प्रारम्भ में इसे अपनाया होगा तथा वास्तव में हर स्थान पर हमेशा यही स्थिति रही है। विभिन्न सभ्य समाजों में चाहे वे मृत हों या जीवित, विवाह सम्बन्धों का प्रारम्भ बहुपत्नी-विवाह ही से हुआ है। यह एक ऐसा व्यापक नियम है जिसमें कुछ ही अपवाद हैं।" (पृ. 134)

> "ऊँची क़ौमों में से अधिकांश ने क़ानूनी रूप से एक पत्नी प्रथा के उस घटिया स्तर[1] तक पहुँचने से पूर्व, जिसपर मैं आगे वार्ता करूँगा,

1. जिसमें कानूनी तौर पर तो एकपत्नी-प्रथा ही मान्य होती है लेकिन वास्तविक व व्यावहारिक तौर पर बहुपत्नी-प्रथा, जैसा कि आज भी यूरोप व अमेरिका। आदि देशों में है।
(और अब तो) दूसरे अनेक देशों व समाजों में भी। —प्रकाशक

इस बहुपत्नी- विवाह प्रथा को अपनाया है।'' (पृ. 137)

पुस्तक (सभ्य क़ौमों का बहुपत्नी-विवाह) "Polygamy of Civilized Peoples" के शुरू ही में लेखक लिखता है :

> ''समस्त इंसानी नस्लों ने अपने सामाजिक विकास के प्रारंभिक दौर में बहुपत्नी-विवाह को कम या ज़्यादा निर्दयतापूर्वक अपनाया है। हम देख चुके हैं — और यह एक ऐसा विषय है जिसकी ओर मुझे फिर लौटकर आना है — कि किस प्रकार बहुपत्नी-विवाह के प्रचलन ही के गर्भ से एक पत्नी-विवाह की प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगीं और बात क्रमशः इस सीमा तक पहुँची कि ये प्रवृत्तियाँ समस्त सभ्य क़ौमों पर छा गईं -------- वास्तविकता तो यह है कि क़ानून और प्रचलन ने हर स्थान पर एक विवाह-प्रथा की कठोरता को, विभिन्न प्रकार के समझौतों (Compromises) द्वारा बहुत कुछ हलका कर दिया है।'' (पृ. 139)

इसके पश्चात् लेखक अरब, मिस्र, मैक्सिको, पेरू, ईरान और भारत के बहुपत्नी-विवाह का सविस्तार वर्णन करता है। फिर वार्ता का अन्त इन शब्दों में करता है –

> ''जिन अनेक तथ्यों तथा घटनाओं से अभी-अभी मैं गुज़रा हूँ, उनके साधारण अर्थ को यदि हम लें तो हम देखेंगे कि समस्त मानवजाति में बहुपत्नी-विवाह ने प्रथम युग की लैंगिक एवं वैवाहिक अराजकता का स्थान लिया है। अन्य समस्त व्यवस्थाओं की भाँति प्रारंभिक बहुपत्नी-विवाह प्रथा ने भी क्रमशः व्यवस्थित रूप अपना लिया, परन्तु स्त्री को सदा कमज़ोर स्थिति में रखकर, एक वास्तविकता जो बहुत महत्वपूर्ण है और जिसने बहुपत्नी-विवाह की व्यवस्था को क्रमशःसमाप्त कर दिया इसके बावजूद कि क़ानून, धर्म और प्रचलन सभी इसे मानते थे, वह वास्तविकता यह है कि बहुपत्नी-विवाह प्रथा ने एक ऐसे भोग विलास का रूप धारण कर लिया जिस तक केवल शासक वर्ग ही पहुँच सकता था। इसी के

साथ सहनीय सामाजिक परिस्थितियों ने पुरुषों की तेज़रफ़्तार मृत्यु को बहुत कुछ सीमित कर दिया था[1] और इसके पश्चात्— जैसा कि हरबर्ट स्पैन्सर ने कहा है और ठीक ही कहा है— जनमत अनिवार्य रूप से एक-पत्नी-प्रथा के पक्ष में हो गया .... इसे (बहुपत्नी-विवाह को) स्पष्ट रूप से नरेशों, बड़े आदमियों तथा पादरियों तक सीमित कर दिया गया .... सब के अन्त में क़ानूनी रूप से एक पत्नी-प्रथा लागू की गई। परन्तु यह एक पत्नी-प्रथा केवल बाह्य या दिखावे की है। व्यवहार में एक पत्नी-प्रथा की कठोरता को समझौतों द्वारा नर्म कर लिया गया है। इन समझौतों में उल्लेखनीय देह-व्यापार एवं वेश्यावृत्ति है, जिसे सहन कर लिया गया है और मिस्ट्रेस रखने का रिवाज है और जिसे क़ानूनी मान्यता प्राप्त हो गई है।'' (पृ. 152,153)

''एक पत्नी विवाह प्रथा तथा सभ्यता'' (Monogamy and civilization) के शीर्षक से लेखक लिखता है:

''अधिकांश सभ्यताओं में, चाहे वे जीवित हों या मृत, क़ानूनी एक पत्नी-प्रथा का मुख्य उद्देश्य विरासत की व्यवस्था तथा जायदाद का विभाजन है।[2] वास्तविकता यह है कि अधिकांश विधि निर्माताओं ने बड़े सीधेपन या बेशर्मी के साथ बहुपत्नी-प्रथा को मान्यता दे दी है, क्योंकि उन्होंने क़ानूनी एक पत्नी-प्रथा के साथ-साथ घरेलू रखैलों को स्वीकृति दे दी है।'' (पृ. 186)

वेश्यावृत्ति तथा नाजाइज़ सम्बंध (Prostitution and Concubinage)

---

1. युद्ध तथा अत्याचारों का ज़ोर कम होने के कारण स्त्रियों की अधिकता तथा पुरुषों की कमी बहुत कुछ समाप्त हो गई और यह कमी बहुपत्नी-विवाह का एक महत्वपूर्ण कारण था। परन्तु बड़े-बड़े युद्धों ने आज यूरोप में फिर यही स्थिति उत्पन्न कर दी है। विस्तारपूर्वक वार्ता आगामी पृष्ठों में आएगी।
2. मानो क़ानूनी एक पत्नी-प्रथा का मूल प्रेरक न तो स्त्रियों के अधिकारों की सुरक्षा की भावना है, न कोई नैतिक मूल्य, बल्कि इसकी प्रेरक शुद्ध स्वार्थपूर्ति और हर हालत में अपना हित है।

के शीर्षक के अन्तर्गत लेखक स्पष्ट रूप से लिखता है :

"मध्यवर्ती युग तथा उसके पादरियों को एक ओर रखते हुए यदि हम अपने-आस पास की अति सभ्य एवं शिष्ट यूरोपीय क़ौमों पर नज़र डालें तो हम देखेंगे कि रखैल स्त्रियों का प्रचलन तो वास्तव में समाप्त हो गया है, लेकिन उसका अत्यंत निकृष्टतम रूप उपपत्नी-सहवास (Concubinage) ख़ूब फल-फूल रहा है तथा जिसका उन्मूलन क़ानूनी और धार्मिक रुकावटें शताब्दियों में भी न कर सकीं तथा बेलचक एवं स्थिर एक पत्नी-विवाह के सम्बन्ध को हमारे रीति-रिवाजों ने स्थायी रूप से मुक़ाबले के निशाने पर रख लिया है।" (पृ. 168, 169)

"............ रीति-रिवाजों ने क़ानून के विरुद्ध बग़ावत कर दी है और एक पत्नी प्रथा वास्तविक न रहकर ज़ाहिरी और नुमाइशी बनकर रह गई है। कम सभ्य लोगों के लिए वेश्याओं के साथ नाजाइज़ सम्बन्धों ने तथा व्यभिचार एवं स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों ने अन्य लोगों के लिए उन भावनाओं के निष्कासन के विषय में, जिनका क़ानूनी आदेशों द्वारा क़ाबू में आना बहुत कठिन है और जो अत्यधिक उद्दंड सिद्ध हुई हैं, सेफ़्टी वाल्व्स (Safety Valves) का काम दिया है।[1] क्या इस प्रकार नैतिक एवं व्यावहारिक पवित्रता प्राप्त हुई ? निस्सन्देह नहीं। इसके परिणामस्वरूप हरामी बच्चों की एक पूरी आबादी है जिन्हें उनके पिता अधिकतर — बल्कि इससे भी ज़्यादा मामलों में छोड़ जाते हैं और जिन्हें जन्म के समय ही से अत्यधिक एवं अनुचित प्रकार का अपमान सहना पड़ता है। इससे हज़ारों कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं जिनका निवारण किसी न किसी प्रकार क़ानून को करना ही पड़ेगा। क़ानूनी रखैलपन ने चीन को — यह एक मिसाल है — इन कठिनाइयों से बचा लिया है। निस्सन्देह

---

1. इंजन में भाप का दबाव सीमा से ऊपर हो जाने पर सेफ़्टी वाल्व स्वत: ही खुल जाता है और अतिरिक्त भाप निकल जाती है।

आदर्श चीज़ बहुत अच्छी होती है परन्तु उसपर वास्तविकता को क़ुरबान कर देना और मानव-प्रकृति की माँगों का ध्यान किए बिना क़ानून बनाना मूर्खता है।'' (पृ. 169, 170)

लेखक ने एक और स्थान पर स्पष्ट किया है :

''हमें केवल आँखें खोलनी होंगी, तत्पश्चात् हम अनुभव कर सकेंगे कि वर्तमान् युग में भी उन देशों में जो सभ्यता में बहुत प्रसिद्ध हैं, उन वर्गों में भी जो बहुत उत्तम और श्रेष्ठ माने जाते हैं, अधिसंख्या लोग बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति रखते हैं तथा जिनका रोकना उनके लिए कठिन हो रहा है।'' (पृ. 136)

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

(1) कम सभ्य क़ौमों में बहुपत्नी-विवाह का आम प्रचलन रहा है।

(2) समस्त सभ्य क़ौमें अपनी सभ्यता सम्बन्धी विकास के प्रारंभिक काल में बहुपत्नी-विवाह पर अमल करती रही हैं और धर्म, रीति-रिवाज तथा क़ानून ने उसे वैध एवं सही माना था।

(3) बाद के युगों में कुछ आर्थिक एवं सामाजिक कारणों (न कि नैतिक कारणों) से जनमत बहुपत्नी-विवाह के विरुद्ध हो गया। इसके बावजूद नरेशों, धार्मिक पेशवाओं और बड़े लोगों में इसका प्रचलन बाक़ी रहा और इसे जाइज़ माना गया।

(4) सबसे अन्त में वह ज़माना आया जब यूरोप में बहुपत्नी-विवाह को निषिद्ध ठहरा दिया गया और एक पत्नी-विवाह, क़ानून द्वारा लागू हो गया।

(5) यह एक पत्नी विवाह दिखावे का और नुमाइशी था। पाश्चात्य देशों के रीति-रिवाजों ने इस क़ानून के विरुद्ध व्यावहारिक रूप से बग़ावत कर दी। वेश्याओं से आशनाई, व्यभिचार, स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध तथा मिस्ट्रेस (उपपत्नी) रखने के सामान्य रिवाज ने एक पत्नी-विवाह के क़ानून की धज्जियाँ उड़ा दीं। अन्ततः क़ानून को रीति-

रिवाज के आगे झुकना पड़ा और वेश्याओं से आशनाई तथा स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को समान्यतः सहन कर लिया गया और मिस्ट्रेस (उपपत्नी) रखने के तरीक़े को अधिकतर देशों में क़ानूनी हैसियत मिल गई।

(6) इस स्थिति ने समाज की पवित्रता तथा पाकीज़गी को लूट लिया और उसे बेसहारा हरामी बच्चों की बड़ी फ़ौज का 'उपहार' प्रदान किया, यह उपहार सोसाइटी के लिए सिरदर्द बना हुआ है और इससे असंख्य जटिल समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

(7) बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्तियाँ आज भी मौजूद हैं और उन समाजों तथा उन वर्गों में मौजूद हैं जो सबसे श्रेष्ठ एवं सबसे अधिक सभ्य माने जाते हैं। ये प्रवृत्तियाँ इन समाजों के अधिकांश लोगों में पाई जाती हैं और इतनी दृढ़ता से पाई जाती हैं कि उनका रोकना कठिन हो रहा है। प्रत्येक देखनेवाला उनके जीवन्त उदाहरणों को सिर की आँखों से देख सकता है।

(8) एक पत्नी-विवाह का क़ानून मात्र सैद्धांतिक हो सकता है, व्यावहारिक नहीं, क्योंकि यह मानव प्रवृत्ति के विरुद्ध है।[1] प्रवृत्ति की उपेक्षा करके कानून बनाना मात्र मानव मूर्खता है।

(9) समय आ गया है कि हम अपनी ग़लती का अनुभव करें और एक से अधिक स्त्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध को क़ानून द्वारा जाइज़ और सही स्वीकार करें।

इस प्रकार के प्रमाणों एवं दृष्टान्तों तथा इसी प्रकार की समस्याओं को सामने रखते हुए डॉ. रोम लौण्डो (Dr. Rom Landau) ने कहा:

> "इतिहास एवं विज्ञान द्वारा उपलब्ध कराई गई समस्त गवाहियों से यह बात अपरिहार्य हो जाती है कि बहुपत्नी-विवाह को और अधिक ईमानदारी से माना जाए।" (Sex,Life and Faith)

---

1. क्यों कि जनसामान्य कभी भी आदर्श (Ideal) पर क़ायम नहीं रह सकते —प्रकाशक

'स्कोपेन होर' (Schopen Hauer) अपने एक लेख Veber die wife में प्रश्न करता है :

"वास्तविक 'एक पत्नीत्व' कहाँ पाया जाता है ?"

इसी प्रकार 'जेम्स हिंटन' (James Hinton) पूछा करता था:

" एकपत्नी प्रथा अपनाने का क्या अर्थ है ? क्या इसे प्राप्त करने का कोई भी अवसर है ? क्या आप अंग्रेज़ों के जीवन को एक पत्नीवाला जीवन कह सकते हैं ?" (Studies in the Psychology of Sex, vol.II, part III, P. 492, by Havelock Ellis)

सबके अन्त में हम यौन मनोविज्ञान के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ एवं लेखक हैवलॉक एलिस (Havelock Ellis) की प्रसिद्ध पुस्तक Studies in the Psychology of Sex (यौन मनोविज्ञान का अध्ययन) का एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। यह उद्धरण कुछ लम्बा है परन्तु इस योग्य है कि इसका अध्ययन अवश्य किया जाए :

" यह बात अनिवार्य रूप से कही जानी चाहिए कि लैंगिक मेल-जोल के सामान्य रूप की हैसियत से एक पत्नी-विवाह का प्राकृतिक प्रचलन लैंगिक विविधताओं से नहीं रोकता, बल्कि वास्तव में वह उन्हें मान्यता देता है.... सबसे अधिक आम लैंगिक प्रकार, जिसकी जीव-विज्ञान सम्बन्धी बुनियाद भी स्पष्ट रूप से मौजूद है, बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति है।[1] यह प्रवृत्ति सभ्यता की समस्त श्रेणियों में पाई जाती है। यहाँ तक कि उच्चकोटि की सभ्यता में भी अमान्यता प्राप्त तथा थोड़ी बहुत स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों के रूप में यह प्रवृत्ति मौजूद है। यह बात अवश्य स्मरणीय है कि क़ानून द्वारा मान्यता प्राप्त बहुपत्नी-विवाह जहाँ भी पाया जाता है, सामान्य नियम के रूप में नहीं पाया जाता, इसकी तो

1. जैसाकि गत पृष्ठों में गुज़र चुका है कि लेखक का विचार यह है कि पुरुष एक पत्नी विवाह प्रथा को पसन्द करने के बावजूद कामवासना में विविधता चाहनेवाला भी सिद्ध हुआ है। अब लेखक कहता है कि लैंगिक विविधता की प्रवृत्ति का सबसे अधिक प्रचलित रूप बहुपत्नी-प्रथा है।

केवल अनुमति होती है। स्त्रियों की संख्या कभी इतनी अधिक नहीं होती कि कुछ धनाढ्य अथवा प्रभावशाली लोगों के अतिरिक्त अन्य लोग एक से अधिक पत्नियाँ रख सकें .... बहुपत्नी-विवाह (Polygyny) तथा बहुपति विवाह (Polyandry) के जो अनेक रूप हमारे बीच पाए जाते हैं वे सबके सब Polygamy[1] के बनावटी एवं अप्राकृतिक रूप हैं। विवाह जो अधिक स्वाभाविक आधार पर विच्छेदित हो सकते हैं, क़ानून द्वारा विच्छेद नहीं हो सकते।[2] परिणाम यह होता है कि सम्बन्धित व्यक्ति अपने जीवन-साथी को बदलने तथा स्वाभाविक एक पत्नी-प्रथा को बरक़रार रखने के बजाय एक और साथी अपना लेते हैं। इस प्रकार वे अस्वाभाविक बहुपत्नी-विवाह को प्रचलित कर देते हैं। एक पत्नी-विवाह व्यवस्था के कारण सदैव ही इस प्रकार की लैंगिक विविधताएँ होती रहेंगी— और सभ्यता निस्सन्देह, लैंगिक विविधता की शत्रु नहीं है– इन लैंगिक विविधताओं को चाहे हम जाइज़ समझें या नाजाइज़, ये घटित होंगी, इसका हमें विश्वास कर लेना चाहिए। सामाजिक नीति की राह यह है कि एक ओर शादी के सम्बन्ध को काफ़ी लोचदार बनाया जाए ताकि यह ख़राबी कम से कम दर्जे तक घट जाए...... और दूसरी ओर जब ये ख़राबियाँ घटित हो जाएँ तो उन्हें जाइज़ मानने के ऐसे तरीक़े अपनाए जाएँ जो उनके हानिकारक प्रभावों को रोक सकें और समस्त सम्बन्धित व्यक्तियों को न्याय उपलब्ध करा सकें...... संसार के किसी भाग में बहुपत्नी-विवाह का इतना प्रचलन नहीं, जितना मसीही देशों में है और संसार के किसी देश में बहुपत्नी-विवाह द्वारा लागू उत्तरदायित्वों से पुरुष के लिए भागना भी इतना आसान नहीं जितना इन देशों में है।" (भाग-2, अध्याय-3, पृ. 491 से 493 तक)

1. यह शब्द बहुपत्नी तथा बहुपति दोनों अर्थ रखता है।
2. यह यूरोप के जटिल और कष्टप्रद तलाक़-क़ानून की भरपूर आलोचना है। इस्लाम के तलाक़-क़ानून बहुत आसान और सीधे-सादे हैं। परन्तु पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित मुसलमान यूरोप की नक़ल में उन्हें भी कठिन और जटिल बनाना चाहते हैं।

इस उद्धरण से निम्नलिखित बातों पर प्रकाश पड़ता है :

(1) एक पत्नी-प्रथा अनिवार्य रूप से बहुपत्नी-विवाह को जन्म देती है।

(2) ईसाई देशों में एक पत्नी-प्रथा क़ानून द्वारा लागू है परन्तु इन देशों में बहुपत्नी-विवाह प्रथा का प्रचलन विश्व के समस्त देशों से अधिक है। यह और बात है कि वह अस्वाभाविक और कृत्रिम रूप में है और उसे क़ानूनी हैसियत से मान्यता नहीं दी जाती।

(3) बहुपत्नी-विवाह प्रथा को क़ानून द्वारा मान्यता न देने का अर्थ यह है कि स्त्री के साथ अन्याय हो, पुरुष उससे आनन्द तो ले परन्तु उसकी और उसके बच्चों की ज़िम्मेदारी न ले, यह तो खुला ज़ुल्म है और मसीही यूरोप में यह ज़ुल्म खुल्लमखुल्ला और बेधड़क हो रहा है।

●●●●●

बहुपत्नी-विवाह

सामाजिक एवं नैतिक पेचीदगियों का समाधान

पिछले अध्यायों में पाश्चात्य तथा यूरोप के यौन तथा काम-मनोविज्ञान- विशेषज्ञों के जो मत प्रस्तुत किए गए हैं उनसे यह वास्तविकता स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है कि बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति क़तई तौर पर एक प्राकृतिक प्रवृत्ति है। इतनी प्राकृतिक कि यह हर युग, हर क़ौम तथा हर सभ्यता में मौजूद रही है। बहुपत्नी-विवाह का क़ानूनी निषेध इस प्रवृत्ति को समाप्त न कर सका वरन् इससे इसमें और भी वृद्धि हुई है। यह बात भी सामने आई कि सामाजिक एवं नैतिक अपेक्षाएँ भी इसकी अनुमति के पक्ष में हैं। इसी लिए समझदारी की बात यह है कि बहुपत्नी-प्रथा को कुछ शर्तों तथा सीमाओं के साथ क़ानून द्वारा वैध माना जाए और समाज को इसके अप्राकृतिक, कृत्रिम, अवैधानिक तथा नैतिकता को क्षति पहुँचानेवाले तरीक़ों से छुटकारा दिलाया जाए। यह आख़िरी बात पिछले अध्यायों में सांकेतिक रूप से आई है। अतः आवश्यकता है कि इसपर विस्तृत रूप में विचार किया जाए।

स्त्रियों की अधिकता

प्राकृतिक रूप से पुरुष तथा स्त्री लगभग बराबर की संख्या में पैदा होते हैं परन्तु युद्ध एवं दंगे आदि के कारणों से कभी-कभी पुरुषों की संख्या घट जाती है तथा स्त्रियों की सँख्या बढ़ जाती है। स्त्रियों की अधिक सँख्या का होना एक ऐसी समस्या है जो क़ौमों के लिए बड़ी परेशानी का कारण होती है। एक ओर स्त्रियों के आवास तथा भरण-पोषण की उपलब्धता का प्रश्न होता है तो दूसरी ओर उनकी काम-इच्छाओं की नैतिक रीति से सन्तुष्टि की समस्या होती है। इसी के साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि समाज के पुरुषों के नैतिक चरित्र तथा समूचे समाज के पुरुषों एवं स्त्रियों के नैतिक चरित्र की सुरक्षा किस प्रकार की जाए ?

समाज में जब अनैतिक चरित्र व कुकर्म पैदा होता है तो सम्बन्धित व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि यदि तुरन्त उसका उन्मूलन न किया जाए तो फलता-फूलता रहता है और पूरे समाज को अपनी लपेट में ले लेता है – इसके अतिरिक्त हरामी बच्चों की भीड़ अपने साथ अनेक प्रकार की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ लाती है। इस प्रकार पूरा समाज दुराचार, अराजकता तथा पेचीदा मसलों और कठिनाइयों का शिकार हो जाता है। इन सभी उलझे हुए मसलों को सुलझाने का केवल एक ही उचित तरीक़ा है कि पुरुषों को कुछ शर्तों और सीमाओं के साथ एक से अधिक स्त्रियों से विवाह की अनुमति दे दी जाए। इसके अतिरिक्त इन पेचीदा मसलों का कोई समाधान नहीं है।

स्त्रियों की अधिकता होने की दशा में ऐसी परिस्थिति का उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है कि एक पुरुष का एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध हो, इससे तो छुटकारा है ही नहीं।[1] प्रश्न केवल यह है कि यह सम्बन्ध नैतिक, क़ानूनी तथा नियमानुसार हो, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री को घर, भरण-पोषण तथा पुरुष की देखभाल और सुरक्षा प्राप्त हो। उसकी सन्तान को समाज में वैध कहा जाए। वह पिता की ज़िन्दगी में उसके प्यार, शिक्षा-दीक्षा तथा उसके पालन-पोषण में पले-बढ़े और पिता एवं उसके निकटतम सम्बन्धियों की मृत्यु होने पर विरासत में से हिस्सा पाए। या यह सम्बन्ध अनैतिक और अनियमित हो, जिसके पश्चात् स्त्री और उसकी सन्तान को उपरोक्त नेमतों में से कोई नेमत न मिले तथा वह और उसकी संतान अपमान एवं तिरस्कार से दर-दर की ठोकरें खाने पर विवश हो और दुराचार एवं गन्दगी की प्रतिमूर्ति बनकर समाज को

---

1. कहा जा सकता है कि ख़ुदा से डरनेवाले समाज में यह भी तो संभव है कि स्त्रियाँ फ़ालतू संख्या में मौजूद रहें परन्तु उनकी ओर कोई निगाह उठाकर भी न देखे। इसका उत्तर यह है कि यह आदर्श है और किसी समाज के समस्त व्यक्ति आदर्श नहीं होते। न समाज की आदर्श दशा सदैव क़ायम रहती हैं, न आदर्श व्यक्तियों को सामने रखकर क़ानून बनाया जाता है। फिर इन स्त्रियों की यौन आवश्यकताओं की पूर्ति, भरण-पोषण, आवास और सुरक्षा एवं देख-रेख की समस्याएँ तो हल करनी ही होंगी।

गन्दा करती फिरें ? इस्लाम केवल पहली स्थिति को जाइज़ ठहराता है। और इन जटिल समस्याओं को हल करने के लिए उसे अपनाने की ज़ोरदार सिफ़ारिश करता है और दूसरी स्थिति को क़ानूनी तौर पर दण्डनीय अपराध और नैतिक रूप से महापाप ठहराता हैं, जबकि 'क़ानूनी एक पत्नीत्व' के पश्चिमी तथा पूर्वी पक्षधर पहली स्थिति — बहुपत्नी विवाह प्रथा — को नैतिक रूप से बुरा तथा क़ानूनी तौर से निषिद्ध ठहराते हैं और दूसरी स्थिति को न केवल यह कि सहन करते हैं बल्कि कभी-कभी तो उसे सभ्यता का प्रतीक समझते हैं। यद्यपि चोटी के पाश्चात्य चिन्तक एवं विचारक अब इस 'सभ्य समाधान' से विरक्त होते दिखाई पड़ते हैं और उनकी प्रवृत्ति बहुपत्नी-विवाह की ओर बढ़ रही है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-18, में बहुपत्नी-प्रथा के कारणों की निशानदेही करते हुए कहा गया है :

> ''बहुपत्नी-विवाह का एक कारण विवाह योग्य स्त्रियों की अतिरिक्त संख्या है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि जब जंगली क़बीले में स्त्रियों की थोड़ी-बहुत, स्थायी तथा विचारणीय अधिकता होगी तो वहाँ बहुपत्नी-विवाह की अनुमति अनिवार्यतः होगी।'' (Polygyny, P.187)

स्त्रियों की अधिकता की समस्या कोई अनहोनी व अनोखी समस्या नहीं है, न ही इसका सम्बन्ध विशेष रूप से केवल वहशी और जंगली क़बीलों के साथ है। इस समस्या का सामना प्रत्येक सभ्य क़ौम ने अपने-अपने युग में किया है और आज यूरोप इसे भुगत रहा है। युद्ध एवं ख़ून के समुद्र से गुज़रकर ही आम तौर पर क़ौमें शासन की बुलन्दी तक पहुँचती हैं और युद्ध वह आपदा है जो पुरुषों को निगलती और स्त्रियों को बे-सहारा करती चली ज़ाती है। डा. वैस्टर मार्क (Dr. Wester Marck), जो यौनशास्त्र तथा विवाह सम्बन्धों के मामले में अथॉरिटी (पूर्णतः दक्ष) माने जाते हैं, का कहना है :

> ''यदि हम शादी की आयु 20 वर्ष से 50 वर्ष गिनें तो दोनों जातियों (स्त्री व पुरुष) के बीच सामान्य परिस्थितियों में (संख्यात्मक) अनुपात का अभाव तीन या चार प्रतिशत स्त्रियों को इस बात पर

बाध्य करता है कि वे अकेले ही जीवन बिताएँ और यह परिणाम है एक पत्नीत्व की अनिवार्यता का। (The Future of Marriage in Western Civilization)

यह निष्कर्ष पाश्चात्य देशों की जनसंख्या की जाँच (Survey) करने के पश्चात् निकाला गया है।[1] परन्तु युद्धों के पश्चात् स्थिति और भी गंभीर हो जाती है। निम्नलिखित आंकड़े जो ब्रिटिश प्रेस से लिए गए हैं, वस्तुस्थिति को एक सीमा तक स्पष्ट कर सकेंगे :

"तीस लाख से अधिक स्त्रियाँ, पति, बच्चे सच-मुच के घर की आशा किए बिना अकेले जीवन व्यतीत करने को बाध्य हैं। स्त्रियों की अतिरिक्त संख्या पिछली शताब्दी में क्रमश: बढ़ती रही। 1939 ई. में ब्रिटेन में पुरुषों से 2818343 स्त्रियाँ अधिक थीं, अब युद्ध ने तीन लाख पुरुष और ले लिए तथा हज़ारों पुरुष लंगड़े और असमर्थ हैं जो रोग-शय्या को नहीं छोड़ सकते, उन हज़ारों लड़कियों का क्या बनेगा जिनके पति और कमानेवाले समाप्त हो गए? यह समस्या युद्ध के बाद ब्रिटेन की समस्याओं में से एक महत्वपूर्ण समस्या[2] है।"

लाहौर के एक दैनिक समाचार-पत्र का लन्दन-स्थित संवाददाता लिखता है :

" दो विश्व युद्धों ने इंग्लैंड में स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच संख्यात्मक अनुपात को बरबाद कर दिया है। अब स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। और इन स्त्रियों में से अधिकतर स्त्रियाँ विवाह की हार्दिक इच्छा पूरी होने से पूर्व ही वृद्धावस्था को प्राप्त कर जाती हैं। उन्हें जीवन के आनन्द उठाने के समस्त अवसर मिलते हैं परन्तु वे

---

1. देखें Social Survey 1952.
2. यह बयान सण्डे क्रॉनिकल (Sunday Chronicle) की एक स्त्री संवाददाता का है। आँकड़ों से सम्बन्धित ऊपर के उद्धरण Marriage Commission report X' rayed P.P 265, 266 से लिए गए हैं।

वास्तविक सन्तोष तथा आत्मा की सन्तुष्टि पाने से वंचित रहती हैं।"

"ज़्यादातर युवतियों के सामने जीवन लक्ष्य की हैसियत से एक ही काम होता है और वह है पति की खोज! इस खोज में वे कोई कसर नहीं छोड़तीं तथा वे इस खोज में प्रत्येक मित्र को भविष्य का पति समझने के भ्रम को पालती रहती हैं।"

"वास्तविकता यह है कि पुरुषों की कमी केवल इंग्लैंड ही में नहीं वरन् पूरे यूरोप में एक समस्या बन गई है। नैतिक आवारगी तथा दुष्चरित्रता की भयानक छाया है, जिसे हर व्यक्ति पाश्चात्य सभ्यता में प्रत्येक स्थान पर देख सकता है। इसका बड़ा कारण पुरुषों की कमी है। स्त्री की विवाह की आकांक्षा उसकी प्रकृति में समाहित है। परन्तु पश्चिम के दिमाग़ी पहलवानों का दृष्टिकोण यह है कि पुरुष को एक से अधिक विवाह नहीं करने चाहिएं। हाँ! स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध जितनी स्त्रियों से चाहे रख सकता है। पश्चिम का क़ानून तथा धर्म इस बात के लिए तैयार हैं कि रखैल (Mistress) रखने तथा वैवाहिक सम्बन्धों के अतिरिक्त अवैध यौन सम्बन्धों को सहन कर लें, परन्तु एक से अधिक नियमगत् विवाह को (सहन करने को तैयार नहीं हैं, इसे) वे नीचता, बुराई तथा कुसभ्यता समझते हैं।"[1]

केवल ब्रिटेन ही में पुरुषों की कमी की समस्या नहीं है वरन् अमेरिका में एक करोड़ 20 लाख कुँवारियाँ हैं और केवल 90 लाख अविवाहित लड़के। यूरोप के ज़्यादातर देशों में पुरुषों की कमी है।[2]

डॉ. मैक्र फ़ेयर लैन' अपनी पुस्तक The Case for Polygamy में एक अन्य पहलू की ओर ध्यान आकर्षित करता है :

"यह वास्तविकता कि बहुपत्नी-प्रथा पर अमल हो रहा है, स्वयं

---

1. Marriage Commission Report X' rayed P.P. 204, 205
2. Islam and Socialism by M.M Hussain.

इस बात का प्रमाण है कि दोनों जातियाँ (स्त्री, पुरुष) सही अनुपात में मौजूद नहीं है। मुझे अभी तक यह जानना बाक़ी है कि भूतकाल में बहुपत्नी-प्रथा के परिणामस्वरूप स्त्रियों की बड़े पैमाने पर कमी हुई हो। यदि विश्व में पुरुषों एवं स्त्रियों की संख्या समान भी हो, तब भी एक पत्नी-विवाह स्वयं अपने तर्क के आधार पर इस बात की माँग करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को शादी करने के लिए बाध्य किया जाए। किसी तर्क के बिना मात्र यही एक तर्क 'एक विवाह प्रथा' के सर्वव्यापी तथा सामान्य व्यवस्था होने का खण्डन करता है।"[1]

ऐसे पाश्चात्य विचारक जो स्त्रियों की अधिक संख्या के कारण बहुपत्नी-विवाह का समर्थन करने लगे हैं, एक दो नहीं हैं। सर जार्ज स्काट (Sir George Scot) का कहना है :

"हमारी इस शताब्दी में ऐसे लोग केवल थोड़े से ही नहीं हैं जिन्होंने स्त्रियों की अधिक संख्या के कारण बहुपत्नी-विवाह का समर्थन किया है।" (Encyclopaedia of Modern Knowledge Vol.V, P. 2572)

स्त्री का बाँझ होना या स्थायी रोगिणी होना

यदि पत्नी स्थायी रूप से बीमार है और वह पति-पत्नी सम्बन्धों के योग्य नहीं है अथवा पति-पत्नी सम्बन्ध उसके जीवन और स्वास्थ्य के लिए घातक हैं तो पुरुष को आप क्या परामर्श देंगे ? आप पुरुष को केवल सब्र का उपदेश दे सकते हैं। परन्तु सब्र की भी एक सीमा होती है। फिर यौन-क्रिया के विषय में अधिक दिनों तक सब्र करना और वह भी यौन-सुख से परिचित होने के पश्चात् ? यह सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं है। तो फिर क्या हो?

---

1. विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा चिकित्सा-सम्बन्धी कारणों से कुछ पुरुष विवाह करने योग्य नहीं होते। परिणाम यह होता है कि कुछ स्त्रियाँ विवाह के बिना ही रह जाती हैं। इन स्त्रियों की समस्या एक पत्नी प्रथा द्वारा नहीं, बल्कि बहुपत्नी प्रथा द्वारा ही हल हो सकती है।

क्या पुरुष स्त्री को तलाक़ दे दे? यदि ऐसा करता है तो यह स्त्री को निस्सहाय बनाकर छोड़ देना है। ऐसी स्त्री की कहीं शादी भी नहीं हो सकेगी। फिर क्या पुरुष अन्य स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध स्थापित करता फिरे अथवा काम-वासनाओं की सन्तुष्टि हेतु कोई अप्राकृतिक तरीक़ा अपनाए? यह तो अपने आपको, अपने समाज की स्त्रियों को और अन्ततः पूरे समाज को गन्दगी में लथ-पथ कर देना है।

वास्तविकता यह है कि उपरोक्त परिस्थिति में इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है कि पुरुष दूसरी शादी कर ले और दोनों पत्नियों के साथ न्याय एवं इंसाफ का रवैया अपनाए। केवल इसी दशा में नैतिक सीमाओं के अन्तर्गत पुरुष की कामवासना की सन्तुष्टि हो सकती है। इस प्रकार घर के काम भी भली-भाँति होते रहते हैं। पहली पत्नी तथा उसके बच्चे कठिनाइयों से बच जाते हैं तथा समाज में नैतिक बुराइयाँ पनपने नहीं पातीं। चाहे आप कितना ही सोचें इस एक समाधान के अतिरिक्त कोई अन्य समाधान आपको न मिलेगा।

इसी से सम्बन्धित एक समस्या स्त्री का बाँझ होना है। पुरुष की यह इच्छा कि उसके यहाँ सन्तान हो, प्राकृतिक भी है और न्यायोचित भी। कभी-कभी यह चीज़ इच्छा से आगे बढ़कर एक आवश्यकता बन जाती है। पुरुष अपने कामों के पूरा करने तथा उनमें क्रम जारी रखने एवं अपनी जायदाद के स्थायित्व एवं देख-भाल के लिए सन्तान का मुहताज होता है। इस आवश्यकता की पूर्ति कैसे हो? क्या इस प्रकार कि पुरुष एक लम्बे समय तक साथ रह चुकी अपनी पत्नी को तलाक़ देकर किसी दूसरी स्त्री से शादी रचा ले? परन्तु तलाक़ तो अन्तिम उपाय है तथा स्त्री का क्या दोष है जो उसे तलाक़ दी जा रही है? बाँझपन तो एक प्राकृतिक दोष है जिसमें स्त्री का कोई इरादा शामिल नहीं होता। दूसरे यह कि तलाक़ के पश्चात् स्त्री का विवाह बहुत मुश्किल से होगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सन्तान चाहता है। ऐसा भी सम्भव है कि बाँझ होने के बावजूद पति-पत्नी के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर हों और वे एक-दूसरे से अलग न होना चाहते हों। ऐसी अवस्था में केवल एक तरीक़ा रह जाता है, वह यह कि पुरुष दूसरा विवाह कर ले और न्याय एवं इंसाफ़ के साथ दोनों पत्नियों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरी तरह निभाए। यह तरीक़ा निस्सन्देह

तलाक़ से बेहतर है, कोई मूर्ख व्यक्ति ही इस की निन्दा कर सकेगा अथवा तलाक़ को इसपर प्रधानता देगा। कहा जा सकता है कि पुरुष दूसरी शादी न करे तथा सन्तान के बिना सब्र कर ले। निस्सन्देह यदि पुरुष चाहे तो यह तरीक़ा अपना सकता है और बहुत-से पुरुष ऐसा करते भी हैं, परन्तु यदि पुरुष सन्तान की इच्छा रखता है या उसे सन्तान की आवश्यकता है तो आप उसे इस प्राकृतिक इच्छा तथा वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति से नहीं रोक सकते। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-18 में बहुपत्नी-विवाह के कारणों की निशानदेही करते हुए कहा गया है :

"सन्तान के लिए पुरुषों की इच्छा, जो कि पूर्व में बहुपत्नी-विवाह का एक विशेष कारण है।" (पृष्ठ 187)

पति-पत्नी के सम्बन्धों की ख़राबी

कुछ स्त्रियाँ बड़े दुष्ट स्वभाव की होती हैं।[1] पुरुष उनकी आवश्यकताएँ चाहे जितनी ही पूरी करे और उनसे प्रेम एवं सहानुभूति का कितना ही बरताव करे, किन्तु उनकी विषाक्तता एवं कटुता में कोई कमी नहीं आती। स्त्री के इस दुष्ट स्वभाव के कारण पुरुष के अन्दर उस स्त्री के प्रति खिन्नता उत्पन्न हो जाती है और घर की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है तथा सन्तान की दीक्षा भी बुरी तरह प्रभावित हो जाती है। पुरुष आत्म-संतुष्टि से वंचित हो जाता है और उसको दाम्पत्य जीवन का कोई आनन्द नहीं मिलता। ऐसे उदाहरण भी जानकारी में आए हैं कि स्त्री शारीरिक संबंध बनाने के लिए भी तैयार नहीं होती। प्रश्न यह है कि इस स्थिति में पुरुष क्या करे ?

पुरुष यदि सब्र और संयम बरते तथा प्रेम एवं नरमी के साथ अपनी पत्नी का सुधार करने का प्रयत्न करे, तो यह एक आदर्श व्यवहार होगा परन्तु आदर्श ऐसी चीज़ है जिसका आदेश नहीं दिया जा सकता और न हम

---

1. इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि पुरुष दुष्ट स्वभाव के नहीं होते या सम्बन्धों की ख़राबी का कारण पुरुषों का कड़वा स्वभाव नहीं होता, क्रोधी तथा दुष्ट स्वभाव दोनों ही में पाए जाते हैं तथा सम्बन्धों के बिगाड़ का कारण कभी केवल पुरुष होता है कभी केवल स्त्री और कभी दोनों। यहाँ केवल दूसरी स्थिति पर वार्ता की जा रही है।

जनसाधारण से आदर्श व्यवहार की आशा कर सकते हैं। फिर कभी-कभी पानी सिर से ऊँचा हो जाता है और आदर्श पर अमल करने का अवसर ही नहीं रहता। इसके बाद केवल दो ही तरीक़े रह जाते हैं– एक तलाक़ का, या दूसरा एक और शादी करने का, और निस्सन्देह दूसरा तरीक़ा पहले तरीक़े से उत्तम है।

अच्छे रिश्तों की दुर्लभता

प्रत्येक माता-पिता चाहते हैं कि उनकी बेटी को अच्छे से अच्छा वर मिले। उनकी यह आकांक्षा स्वाभाविक भी है और उचित भी तथा बेटी के भविष्य के लिए हितकारी भी। परन्तु कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है कि व्यक्ति के परिचय-क्षेत्र में ऐसा लड़का नहीं मिलता जो कुँवारा होने के साथ नेक, सदाचारी तथा भरोसे के क़ाबिल भी हो। अलबत्ता ऐसे रिश्ते मिल सकते हैं जो नेक और भरोसे के क़ाबिल तो हैं परन्तु विवाहित हैं। अब माता-पिता के सामने केवल दो उपाय होते हैं– एक यह कि वे अपनी पुत्री का विवाह किसी ऐसे बदचलन कुँआरे लड़के से कर दें जो भरोसे के क़ाबिल न हो, जिसके बाद लड़की की ज़िन्दगी सदा के लिए अजीरन हो जाए और स्वयं माता-पिता के जीवन में भी कड़वाहट घुल जाए। दूसरा तरीक़ा यह है कि वे किसी ऐसे व्यक्ति को विवाह के लिए तैयार करें जो यद्यपि विवाहित हो, परन्तु भरोसे के क़ाबिल और नेक हो। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति इसी दूसरे तरीक़े को उत्तम ठहराएगा और किसी ऐसे व्यक्ति के तैयार हो जाने पर निस्संकोच अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर देगा।[1]

अनाथों तथा विधवाओं की व्यवस्था

विधवाएँ तथा अनाथ समाज पर बोझ होते हैं। कुछ क़ौमों में विधवाओं का विवाह हराम तथा अकल्पनीय है[2] – कुछ क़ौमों में यही स्थिति

1. यद्यपि इस प्रकार की परिस्थिति बहुत कम ही उत्पन्न होती है। –प्रकाशक
2. भारत में पति के शव के साथ पत्नी के सती होने का महत्वपूर्ण कारण यह था कि हिन्दू समाज में विधवा का विवाह हराम और अकल्पनीय था। हिन्दू समाज सुधारकों ने इस

तलाक़ पाई हुई स्त्री के विवाह की भी है।

कुछ समाजों में विधवा का विवाह हराम तो नहीं परन्तु लज्जा तथा अपमान का कारण समझा जाता है। जिन समाजों में विधवा अथवा तलाक़ पाई हुई स्त्री के विवाह का प्रचलन है उनमें भी उन्हें कुँआरी के मुक़ाबले में नीचा समझा जाता है और उनका विवाह कठिनाई से होता है। यदि विधवा या परित्यक्ता के साथ सन्तान भी हो तो विवाह की समस्या और भी कठिन हो जाती है। इस प्रकार विधवा एवं तलाक़शुदा (परित्यक्ता) स्त्री के जीवन में मुसीबतों की भरमार हो जाती है, क्योंकि उसपर अपना ही नहीं, वरन् अपने बच्चों का भी भार होता है। यही दशा लावारिस, ग़रीब तथा निर्धन लड़कियों की है। उनका विवाह या तो होता ही नहीं या फिर वे निकम्मे, नाकारा तथा दुष्ट लोगों के पल्ले बँध जाती हैं। कभी-कभी तो ग़रीबी के सताए हुए माता-पिता या नातेदार बेचारी बेज़बान लड़की का सौदा कर देते हैं तथा जो व्यक्ति उन्हें अधिक से अधिक रक़म दे दे उसके हाथ में लड़की का हाथ दे देते हैं, चाहे वह बूढ़ा, चरित्रहीन, कुकर्मी व अत्याचारी ही क्यों न हो। जिसके परिणामस्वरूप लड़की जीवन भर आठ-आठ आँसू रोती रहती है।

इस्लाम से दूरी तथा हिन्दुस्तान की ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों से प्रभावित होने के कारण मुस्लिम समाज में भी यह स्थिति एक सीमा तक पाई जाती है और उनमें अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो रही हैं। स्त्री के अविवाहित रहने से नैतिक ख़राबियाँ ही उत्पन्न नहीं होतीं वरन् बहुत-सी सामाजिक एवं आर्थिक उलझनें भी पैदा हो जाती हैं। स्त्री और उसके बच्चे कहाँ रहें और क्या खाएँ? उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा देख-भाल कैसे हो? उनका अभिभावक एवं पोषक कौन हो? ये तमाम व्यावहारिक प्रश्न हैं और इनका एक ही उत्तर है और वह है विवाह! परन्तु जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में बताया गया कि विधवा, तलाक़ पाई हुई औरतों और ग़रीब लड़कियों का विवाह बड़ी जटिल समस्या है। कुँआरे और खाते-पीते लोग आम तौर से कुँआरी तथा धनवान लड़की को पसन्द करते

कुरीति को समाप्त करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे अभी तक पूरी तरह सफल नहीं हो सके हैं।

हैं। परिणाम यह होता है कि गिरे पड़े और नाकारा लोग इन मुसीबत की मारी हुई तथा दया की पात्र औरतों और लड़कियों के हिस्से में आते हैं और इससे समस्या और अधिक जटिल एवं पेचीदा हो जाती है।

विधवा एवं तलाक़शुदा स्त्री को कुमारी का स्थान मिल जाए, यह लगभग असम्भव ही नहीं वरन् मानव-मनोविज्ञान के प्रतिकूल भी है। अतः कुँवारे और सुयोग्य पुरुष यदि विधवा, परित्यक्ता (तलाक़ पाई हुई स्त्रियाँ), अनाथ तथा ग़रीब औरतों और लड़कियों की ओर आकृष्ट न हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस स्थिति में इसके दो ही समाधान हो सकते हैं– एक यह कि ऐसी स्त्रियों का विवाह विधुर पुरुषों से कर दिया जाए। दूसरे यह कि ख़ुदा से डरनेवाले संयमी विवाहित लोगों को (ख़ुदा की प्रसन्नता के लिए) दूसरी शादी के लिए तैयार किया जाए और यदि वे तैयार हो जाएँ तो उनके साथ उपरोक्त स्त्रियों एवं लड़कियों का विवाह कर दिया जाए। हमारी राय में इस समस्या का इन दो समाधानों से अच्छा कोई और समाधान नहीं है। हमें विश्वास है कि जो व्यक्ति ख़ुदा की प्रसन्नता-प्राप्ति के लिए किसी विधवा, तलाक़ शुदा, अनाथ तथा ग़रीब लड़की से विवाह करेगा वह अल्लाह की ओर से असीमित प्रतिदान (अज्र) पाएगा और मानवता के प्रति उपकारक समझा जाएगा। यह समाधान विवाह न होने या ग़लत जगह विवाह होने से कई गुना बेहतर है।

स्त्री की प्राकृतिक असमर्थता

वैवाहिक जीवन का बुनियादी पहलू यौन-इच्छाओं की सन्तुष्टि है। यह इंसान की स्वाभाविक माँग भी है और सतीत्व एवं नैतिक सुरक्षा के बारे में भी इसका बुनियादी महत्व है। जहाँ तक पुरुष का सम्बन्ध है वह यौन-प्रसंग के विषय में अपनी ज़िम्मेदारी हर समय अदा कर सकता है, परन्तु स्त्री हर समय यौन-प्रसंग के लिए उपयुक्त नहीं होती। हर महीने में तीन से लेकर दस दिन तक उसे मासिक धर्म (Monthly Course) होता है। इन दिनों वह सहवास के लिए क़तई उपयुक्त नहीं होती। बच्चा जनने के पश्चात् उसपर लगभग चालीस दिन तक यही हालत रहती है। गर्भावस्था में सहवास करना माँ तथा बच्चा दोनों के

लिए हानिकारक हो सकता है और कभी-कभी गर्भपात् की भी नौबत आ जाती है जिसके फलस्वरूप बच्चे के नष्ट हो जाने तथा बच्चे की माता के स्वास्थ्य एवं जीवन के ख़तरे में पड़ जाने की आशंका हो जाती है। दूध पीने की अवधि में यौन सम्बन्ध बच्चे के पहलू से अनुचित होता है। यदि गर्भ ठहर जाए तो दूध के कम या ख़राब हो जाने की आशंका हो जाती है। गर्भावस्था एवं दूध पिलाने की अवधि कई वर्ष लम्बी होती है और ऐसा हो सकता है कि स्वस्थ एवं शक्तिशाली व्यक्ति के लिए इतने दिन सब्र करना कठिन हो जाए विशेष रूप से इस दौर में जब कि अश्लील गानों, गन्दे उपन्यासों, भड़कीली फ़िल्मों तथा नंगे एवं निर्लज्ज सौन्दर्य के आकर्षक प्रदर्शनों ने इंसान की वासनात्मक भावनाओं को उत्तेजित कर रखा है। ऐसे लोग यदि साधन रखते हों तो वे दो रास्तों में से कोई एक रास्ता अपना सकते हैं। एक यह कि किसी व्यभिचारिणी से सम्बन्ध रखें, रखैल को घर में डाल लें, किसी स्त्री से स्वच्छन्द यौन सम्बध क़ायम कर लें या कोई अप्राकृतिक तरीक़ा अपना लें। दूसरा रास्ता यह है कि पुरुष एक अन्य स्त्री से विवाह कर ले तथा नैतिक सीमा में रहते हुए यौनिक माँगों की सन्तुष्टि के साथ स्त्री एवं उसके बच्चों के अधिकारों को अदा करे। नैतिक चेतना तथा सामाजिक समस्याओं की समझ रखनेवाला हर व्यक्ति पहले तरीक़े को ग़लत और समाज के लिए घातक तथा दूसरे रास्ते को सही तथा प्रधानता योग्य ठहराएगा। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-18 में बहुपत्नी-विवाह के कारणों की निशानदेही करते हुए कहा गया है :

> "बहुत-से सीधे-सादे[1] लोगों में पति अपनी पत्नी से प्रत्येक महीने केवल एक विशेष अवधि के लिए अलग नहीं रहता बल्कि स्त्री के गर्भ धारण कर लेने या कम से कम गर्भ के अन्तिम दिनों में और बच्चे के जन्म के पश्चात्, जबतक बच्चे का दूध न छूट जाए, अपनी

1. न जाने इसमें सादगी की क्या बात है! यह एक चिकित्सा सन्बन्धी हक़ीक़त है कि स्त्री से गर्भावस्था में लैंगिक सम्बध उसके और बच्चे के लिए हानिकारक होता है। विशेषरूप से गर्भ के अन्तिम समय में। यह भी एक चिकित्सा सम्बन्धी वास्तविकता है कि दूध पिलाने के ज़माने में यदि गर्भ ठहर जाए तो उसका प्रभाव दूध पर पड़ता है और दूध की ख़राबी का बच्चे पर।

पत्नी से अलग रहता है जिसका अर्थ यह है कि पुरुष की पत्नी से दूरी दो वर्ष या अधिक अवधि तक चलती रहती है।''

(पृ. 187, शब्द Polygyny)

एनथोनी एम. लूडोविसी (Anthony M. Ludovici) कहता है :

''एकपत्नीत्व की शादी जो दो विवाह-योग्य एवं स्वस्थ व्यक्तियों के मेल से रचती है, में पति अपने आपको जटिल तथा समाधान न हो सकनेवाली मुश्किल में घिरा हुआ पाता है। यदि वह सामान्य तथा स्वस्थ है तो वह कई महीनों के लिए अपनी पत्नी से दूर रहने के बारे में स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। जबकि उसके लिए ऐसा करना बच्चे की भलाई के लिए अनिवार्य है..... आधुनिक सभ्यता का दामन इस ख़राबी तथा कुरूपता से कलंकित है कि उसकी अपनाई हुई योजना के अनुसार पुरुष बाध्य होता है कि इस अवधि में वह गुप्त मुलाक़ातों, धोखा-धड़ी तथा छिप-छिपाकर दुष्कर्मों की राह अपनाए जिसके परिणामस्वरूप पुरुष हर सम्भव ख़तरे तथा ख़र्चे से दोचार हो सकता है तथा सामान्य रूप से होता भी है।'' (Woman, a Vindication, P.P 165, 166)

नैतिकता की सुरक्षा

गत पृष्ठों में यौनशास्त्रियों तथा काम-विशेषज्ञों के विचार सविस्तार प्रस्तुत किए जा चुके हैं जिनसे यह वास्तविकता भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि पुरुष प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रूप से बहुपत्नी-विवाह का रुझान रखता है। कुछ यौनशास्त्र विशेषज्ञों के निकट पुरुष स्वाभाविक रूप से एक पत्नी-विवाह को पसन्द करता है परन्तु इसी के साथ वह यौन मामलों में विविधता भी चाहता है। उन विशेषज्ञों के निकट, विविधताप्रियता की सबसे अधिक प्राकृतिक एवं सामान्य शक्ल बहुपत्नी-विवाह है जिसकी जीवविज्ञान सम्बन्धी बुनियादें भी हैं। इस प्रकार वे भी इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि पुरुष स्वाभाविक रूप से बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति रखता है। यद्यपि इस प्रवृत्ति की बुनियाद यौन मामलों में विविधता की इच्छा है।

ये विचारक हैवानी और इंसानी प्रकृति के अतिरिक्त मानव-इतिहास को भी प्रमाणस्वरूप पेश करते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक क़ौम और प्रत्येक काल में बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन रहा है और इसे जाइज़ और सही माना गया है। और यदि एक-आध समाज में एक पत्नी-प्रथा क़ानून द्वारा लागू रही भी, तो समाज ने बहुपत्नी-प्रथा के ग़ैर क़ानूनी, अनैतिक तथा कृत्रिम उपाय अपनाकर एक पत्नी-प्रथा को व्यावहारिक रूप से रद्द कर दिया है और ऐसे किसी समाज में बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन, उन समाजों से कम नहीं रहा है जिनमें बहुपत्नी-विवाह प्रथा की क़ानून द्वारा अनुमति है। यह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि पुरुष बहुपत्नी-प्रथा की ओर स्वाभाविक रूप से प्रवृत्ति रखता है।

यह समीक्षा उन विशेषज्ञों एवं विचारकों की है जो 'एकपत्नी-प्रथा' के समर्थक हैं और इसे बहुपत्नी-प्रथा से उत्तम तथा वैवाहिक सम्बन्धों का उन्नत एवं आदर्श रूप क़रार देते हैं। परन्तु पाशविक तथा मानवीय जीवन के विस्तृत अवलोकन, इंसानी मनोविज्ञान के गहन अध्ययन, यौन विज्ञान की व्यापक छान-बीन तथा क़ानूनी एक पत्नी-प्रथा की नितान्त असफलता ने उन्हें इस निष्कर्ष तक पहुँचा दिया कि इसके लिए बहुपत्नी-प्रथा ही स्वाभाविक तरीक़ा है और इससे बचना सम्भव नहीं है।

इस समीक्षा को यदि किसी हद तक अतिशयोक्ति भी मान लिया जाए – यद्यपि एक पत्नी-प्रथा के समर्थकों से बहुपत्नी-प्रथा के प्रति अतिशयोक्ति की आशा नहीं की जा सकती— तब भी आप इतना तो कह सकते हैं कि इसमें किसी सीमा तक अतिशयोक्ति है परन्तु इस समीक्षा को बिल्कुल ही रद्द नहीं कर सकते। आप यह दावा नहीं कर सकते कि पुरुषों में बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होती। ऐसा कहना अनुभव, सर्वेक्षण, मानव-इतिहास तथा इंसानी मनोविज्ञान हर चीज़ का इनकार है।

यदि यह समीक्षा सही है— और निस्सन्देह इसे ग़लत सिद्ध नहीं किया जा सकता— तो प्रश्न यह उठता है कि कौन-सा तरीक़ा स्वाभाविक, उचित, व्यावहारिक तथा समाज के प्रति हितकारी होगा? बहुपत्नी-प्रथा को क़ानून

द्वारा निषिद्ध ठहरा दिया जाए? अथवा एक-पत्नी-प्रथा के आम प्रचलन के साथ बहुपत्नी-प्रथा की भी क़ानून द्वारा गुंजाइश रखी जाए और उसके लिए कुछ सीमाएँ तथा पाबन्दियाँ निर्धारित कर दी जाएँ?

इस प्रश्न का उत्तर देते समय इस बुनियादी हक़ीक़त को अवश्य सामने रखना चाहिए कि किसी प्राकृतिक एवं स्वाभाविक चीज़ का रुख़ तो मोड़ा जा सकता है और उस पर कुछ सीमाएँ एवं पाबन्दियाँ भी लगाई जा सकती हैं परन्तु उसे बिल्कुल समाप्त नहीं किया जा सकता। ऐसी हर कोशिश न केवल यह कि विफल होती है बल्कि अन्ततः विपरीत परिणामों का कारण बनती है। वास्तविकता यह है कि प्रकृति अपने से लड़नेवालों को कभी क्षमा नहीं करती।

इंसान की समस्त स्वाभाविक इच्छाओं एवं माँगों की यही दशा है। यदि विस्तार का डर न होता तो एक-एक स्वाभाविक माँग को लेकर बताया जाता कि इन माँगों का रुख़ मोड़ना अथवा इनपर पाबन्दी लगाना एवं इन्हें सीमित करना तो सम्भव है परन्तु इन्हें बिल्कुल समाप्त नहीं किया जा सकता। इस स्थान पर हम केवल यौन-इच्छा ही को लेते हैं जो हमारे विषय "बहुपत्नी विवाह की स्वाभाविक प्रवृत्ति" से अति निकट है।

इसान प्राकृतिक रूप से यौन इच्छा रखता है। इस इच्छा की सन्तुष्टि के विषय में आप कुछ सीमाएँ, पाबन्दियाँ, शर्तें तथा नियम बना सकते हैं — और बनाने चाहिए क्योंकि इनके बिना इच्छा बे-लगाम हो जाएगी और व्यक्ति एवं समाज दोनों को तबाह कर देगी। यह बात केवल यौन इच्छा ही तक सीमित नहीं है वरन् समस्त इच्छाओं की यही दशा है — परन्तु यदि आप यौन-इच्छा को बिल्कुल समाप्त करने का निर्णय ले लें और उसके लिए व्यावहारिक रूप से जीतोड़ कोशिशें शुरू कर दें तो ये कोशिशें नाकाम हो जाएँगी तथा इनकी घोर प्रतिक्रिया होगी। अन्ततः लैंगिक भावनाओं का लावा फूटकर बह निकलेगा और समाज को बहा ले जाएगा। यूरोप के मसीही राहिबों (संसार त्यागी संतों) का इतिहास बताता है कि उन्होंने यौन-इच्छाओं को बिल्कुल ही समाप्त करना चाहा तो इन इच्छाओं ने उनसे किस प्रकार बदला लिया। इस विषय का बहुत संक्षिप्त विवरण 'History of European Morals' (यूरोप की नैतिकता का

इतिहास) के लेखक (T. E. H. Lacky) की ज़बानी सुनिए :

"दुनिया के बड़े पादरी जॉन 23 ने व्यभिचार एवं स्वयं अपनी माता व बहन के साथ दुष्कर्म किया। कन्टरबरी के उसक़ुफ़ (पादरी) 1171 ई. में केवल एक ही गाँव में 17 नाजाइज़ बच्चों के पिता निकले। स्पेन के एक उसक़ुफ़ (ईसाई धर्मगुरू, पादरी) 1130 ई. में 70 लौंडियाँ रखे हुए थे। हेनरी तृतीय सेशर के पादरी की 1274 ई. में 60 नाजाइज़ सन्तानें निकलीं। इन सबको अपवाद मान कर इनकी ओर से दृष्टि हटा भी लीजिए तब भी इसका क्या कीजिए कि उस ज़माने के पादरियों की आम बदचलनी तथा कामुकता के सुबूत में प्रामाणिक गवाहियाँ भरी पड़ी हैं। अछूती स्त्रियों (ननों) की ख़ानक़ाहें (आश्रम) अब ख़ानक़ाहें नहीं रही थीं, वरन् व्यभिचार के अड्डे तथा नाजाइज़ बच्चों के क़ब्रिस्तान थे। व्यभिचार तथा कामुकता के जोश में मुहर्रमात[1] तथा ग़ैर-मुहर्रमात[2] का अन्तर भी समाप्त हो गया था। अत: बार-बार ऐसे क़ानूनों की आवश्यकता पड़ी कि पादरी अपनी माता एवं बहनों से दूर रहें...... स्वयं उपदेशकों की दशा यह थी कि वही सबसे अधिक इस बुराई में संलिप्त होते थे ...... यह सब क्या था ? उसी वैवाहिक सम्बन्ध को निषिद्ध करने का दुष्परिणाम। सारी ख़राबियों की जड़ यही शादी तथा विवाह के स्वाभाविक एवं पवित्र तरीक़ों के निषेध की कोशिश थी। पानी के स्वाभाविक बहाव को रोका जाएगा तो वह हौज़ में निस्सन्देह गन्दगी तथा दुर्गन्ध पैदा कर देगा।" (History of European Moral)

यूरोप ही के लिए यह बात ख़ास नहीं है। पूर्व में भी जहाँ संन्यास का तजुर्बा किया गया और यौन-इच्छा को बिल्कुल ख़त्म करने की कोशिश की

1. वे स्त्रियाँ जिनसे धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से विवाह करना वार्जित है। –प्रकाशक
2. वे स्त्रियाँ जिनसे विवाह करना जाइज़ है।

गई उसके कम या ज़्यादा यही परिणाम निकले हैं।[1] इसकी विस्तृत जानकारी के लिए संन्यास के इतिहास की किसी पुस्तक का अध्ययन करना पर्याप्त होगा।

अत: बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति एक प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रुझान है। इस रुझान को नियंत्रित करने के लिए आप समुचित शर्तें और सीमाएँ लागू कर सकते हैं, और निस्सन्देह यह क़दम सही होगा। परन्तु क़ानून द्वारा इस रुझान को आप मिटाना चाहेंगे तो कभी सफल न होंगे। यह प्रवृत्ति अपने प्रस्फुटन के लिए कोई न कोई रास्ता निकाल लेगी जो क़ानूनी और नैतिक रास्ते से निस्सन्देह बुरा होगा और वस्तुत: हुआ भी यही। पश्चिम में क़ानूनी एक पत्नी-विवाह के पश्चात् स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध इतने आम हो गए कि उसने पिछले समस्त रिकार्ड तोड़ दिए। मैक्सनार्डन (Max Nardon) बड़े विश्वास के साथ कहता है :

> ''एक पत्नी-प्रथा क़ानून द्वारा लागू किए जाने के बावजूद पुरुष सभ्य देशों में बहुपत्नी-विवाह ही की स्थिति में रहता है। एक लाख आदमियों में से मुश्किल से एक आदमी होगा जो मरणशय्या पर कह सके कि वह अपनी पूरी ज़िन्दगी में एक स्त्री के अतिरिक्त किसी से परिचित नहीं हुआ।'' (Conventional lies of civilisation. P.301)

इतिहास में व्यभिचार इतना प्रचलित नहीं हुआ[2] और यह बात भी निस्संकोच कही जा सकती है कि यदि एक पत्नी-विवाह का क़ानूनी प्रचलन इसका एकमात्र कारण नहीं, तो महत्वपूर्ण कारण ज़रूर है, क्योंकि स्वाभाविक इच्छाओं एवं माँगों को दबाने की प्रतिक्रिया सदा भयंकर होती है।

परन्तु बात केवल प्रतिक्रिया की नहीं है। बहुपत्नी-विवाह तथा

---

1. भारत की देवदासियों का हाल कौन नहीं जानता ?
2. ब्रिटेन के प्रसिद्ध स्वतन्त्र विचारक एवं दार्शनिक बरट्रेंड रसेल का भी यही विचार है। उसके निकट इसका कारण यह है कि बहुपत्नी-विवाह की भावना प्राकृतिक है और स्त्री की स्वतन्त्रता ने इस के लिए पहले से अधिक अवसर उपलब्ध कर दिए हैं। (Marriage and Morals. P. 139)

स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों में नैतिक पहलू के अतिरिक्त दूसरा बड़ा अन्तर यह है कि बहुपत्नी-विवाह अपने साथ क़ानूनी और नैतिक ज़िम्मेदारियाँ लाता है क्योंकि पुरुष पर अपनी समस्त पत्नियों और उनसे जन्मी सन्तानों की ज़िम्मेदारी आती है, अतः एक से अधिक विवाह वही लोग करते हैं जो बहुपत्नी-विवाह की घोर प्रवृत्ति रखने के कारण उसकी ज़िम्मेदारियाँ उठाने को तैयार होते हैं। इसके विपरीत स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों से पुरुष पर कोई नैतिक या वैधानिक ज़िम्मेदारी नहीं आती। अतः एक से अधिक स्त्रियों की ओर जिसका थोड़ा-सा भी रुझान होता है — और यह रुझान वस्तुतः हर पुरुष के अन्दर मौजूद है — वह बहती गंगा में हाथ धो लेता है। यौन लैंगिक मनोविज्ञान का विशेषज्ञ हैवेलॉक एलिस (Havelock Ellis) कहता है :

> "हमारा विचार है कि यदि हम बहुपत्नी-विवाह को जाइज़ मानने से इनकार करेंगे तो हम उन ज़िम्मेदारियों को भी मानने से इनकार कर देंगे जो बहुपत्नी-विवाह से एक व्यक्ति पर लागू होती हैं। बहुपत्नी-प्रथावाले रिश्तों की ज़िम्मेदारियों से इतनी सरलता के साथ विमुखता का अवसर प्रदान करके हम पुरुष को उन रिश्तों (अर्थात् स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों) के लिए — यदि वह उनके विषय में बुरी नीयत रखता है — प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार तो हम उस दुराचार व अनैतिकता पर, जिसका हम अत्यन्त उच्च स्तर पर खण्डन करते हैं, लोगों के सामने लाभकारी पहलू रख देते हैं। हमारी बहुपत्नी प्रथा का कोई क़ानूनी वुजूद नहीं है। इसलिए उसकी ज़िम्मेदारियाँ भी कोई क़ानूनी वुजूद नहीं रखतीं। शुतुरमुर्ग़ — एक आम धारणा के अनुसार — अपना सिर रेत में छिपा लेता है और घटनाओं से आँखें बन्द करके उन्हें विनष्ट करने की कोशिश करता है। परन्तु एक चिर परिचित पशु है जो यही कार्यशैली अपनाता है और उसे 'मनुष्य' कहते हैं।" (Studies in the Psychology of Sex, Vol.II, Part III P.P.493, 494)

यही मनोवैज्ञानिक आगे कहता है :

''विविधता एक ठोस वास्तविकता है जो घटित होकर रहती है, चाहे हम चाहें या न चाहें। बेहतर बात यही होगी कि हम उसे मान लें अथवा उसकी अनुमति दे दें। हमें यह भी मानना पड़ेगा कि प्रारंभिक युग के मुक़ाबले में सभ्यता एवं संस्कृति के युग में इसकी ओर आकर्षण अधिक महसूस होता है।[1] जरसन (Gerson) ने Sexual Problem, Sept 1908. p. 538 पर कहा है कि जिस प्रकार एक सभ्य व्यक्ति उस सादा, मोटे और एक ही जैसे खाने से सन्तुष्ट नहीं हो सकता जिससे एक क़िसान सन्तुष्टि महसूस करता है, ठीक इसी प्रकार किसान लड़के और लड़कियाँ यौन सम्बन्धों में लगभग हमेशा ही एक पत्नी-प्रथा की प्रवृत्ति रखते हैं। परन्तु सभ्य व्यक्ति अपनी परिवर्तनशील, भावुक तथा नाज़ुक अभिरुचियों के कारण विविधताप्रिय होने के लिए हर समय तत्पर रहते हैं -------
लैकी (Lecky) 'यूरोपीय नैतिकता का इतिहास' (History of European Morals) के अन्त में अपने इस विश्वास का एलान करता है कि दो व्यक्तियों का सहवास यद्यपि सामान्यत: पति-पत्नी के रिश्ते का वर्तमान तरीक़ा है परन्तु इससे यह निष्कर्ष किसी भी प्रकार नहीं निकलता कि समाज की भलाई एवं हित इसी में है। अत: पति-पत्नी रिश्ते का एक मात्र तरीक़ा यही होना चाहिए।''
(पृ. 495)

''निस्सन्देह एक पत्नी-प्रथा के नियमित एवं प्रचलित तरीक़े से विविधता का सबसे अधिक सामान्य रूप जो मानव-सभ्यता के प्रत्येक युग में रहा है, बहुपत्नी-प्रथा अथवा एक पुरुष का एक से अधिक स्त्रियों से यौन सम्बन्ध है। कभी इसे सामाजिक और क़ानूनी तरीक़े से मान भी लिया गया है और कभी नहीं भी माना गया। परन्तु किसी भी तरह ऐसा नहीं हुआ कि बहुपत्नी-प्रथा घटित न हुई

1. लेखक का दृष्टिकोण यह है कि यौन मामलों में विविधता के अनुभवों की गुंजाइश होनी चाहिए और उसे सही माना जाना चाहिए। चाहे बहुपत्नी-प्रथा के रूप में हो या किसी अन्य रूप में।

हो।'' (पृ. 497)

हक़ीक़त यह है कि यदि हम बहुपत्नी-प्रथा की नैतिक एवं वैधानिक व्यवस्था को क़ानूनी तौर पर निषिद्ध ठहरा दें तो इसका यह परिणाम बिल्कुल नहीं निकलेगा कि लोग एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेंगे। इसके विपरीत होगा यह कि अधिकतर लोग स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों की राह अपना लेंगे, क्योंकि इस तरीक़े को अपना लेने से पुरुष पर कोई नैतिक या क़ानूनी दायित्व नहीं आता और वह क़ानून द्वारा निषिद्ध भी नहीं है। पश्चिम में बहुपत्नी-प्रथा को निषिद्ध करने का परिणाम यही निकला कि पुरुष की स्वाभाविक प्रवृत्ति के लिए, जो अश्लील संस्कृति के निरंतर प्रेरकों के कारण सारी सीमाएँ पार कर चुकी थी, कोई रोक शेष न रही और उसने अपनी काम-पिपासा शान्त करने के लिए वे तमाम तरीक़े अपना लिए जो उसके वश में थे या जो वह सोच सकता था।[1] जेम्म हिंटन (James Hinton) मानता है :

> ''बलपूर्वक लागू की हुई एक पत्नी-प्रथा वेश्यावृत्ति की अनेक ख़राबियों की ज़िम्मेदार है। वह द्वेष एवं युद्धों का कारण बनती है, स्त्रियों में शत्रुता बढ़ाती है और (पति-पत्नी के बीच) सम्बन्ध को शारीरिक सम्पर्क तक ही सीमित कर देती है। परिणाम यह होता है कि स्वेच्छापूर्वक सहयोग, सतीत्व एवं पवित्रता, नैतिक बिगाड़ (Corruption) में बदल जाते हैं।[2]''

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा. सी. जी. जंग (Dr. C.G. Jung) अपनी एक पुस्तक में लिखता है :

> ''अफ़्रीक़ी मिशनरियों द्वारा बहुपत्नी-प्रथा की समाप्ति का परिणाम यह निकला कि वेश्यावृत्ति एवं वेश्याकर्म में इस सीमा तक वृद्धि हुई

---

1. इसका छोटा सा नमूना मिस केलर, डाक्टर वार्ड और ब्रिटेन रक्षामन्त्री मिस्टर प्रोफ़्योमो के प्रकरणों में देखा जा सकता है। इस गन्दगी में ब्रिटेन के उच्चतम समाज के बड़े से बड़े व्यक्ति संलिप्त थे और उनके घिनावने चरित्र का भेद केवल इसलिए न खुल सका कि डा. वार्ड ने आत्महत्या करके उनपर बहुत मोटा परदा डाल दिया।
2. Marriage Commission Report X' Rayed, P.268)

कि केवल यूगाण्डा को 20 हज़ार पौंड वार्षिक गुप्तरोगों की रोक-थाम पर व्यय करना पड़ रहा है। रहे इसके नैतिक परिणाम, तो वे अति गंभीर एवं अकथनीय हैं।'' (Modern Man is Search of a Soul)

कार्ल मार्क्स के वफ़ादार समर्थक तथा साम्यवाद का महान सदस्य 'फ्रैड्रिक ऐंगिल्स' ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक ''परिवार, निजी मिलकियत तथा राज्य का प्रारम्भ''[1] में एक पत्नी-प्रथा के विषय में जिन विचारों को व्यक्त किया है उनका उल्लेख भी उपयोगिता से ख़ाली न होगा। उसने जो कुछ कहा है वह तो बहुत अधिक है परन्तु हम यहाँ उसके कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :

''हैतायरिज़्म से 'मार्गन'[2] का अभिप्राय विवाह-सम्बन्ध के अतिरिक्त पुरुषों एवं अविवाहित स्त्रियों का वह लैंगिक सम्बन्ध है जो एक पत्नी-प्रथा के साथ-चलता रहता है, तथा जैसा कि सभी जानते हैं, सभ्यता की पूरी अवधि में विभिन्न रूपों में फलता और फूलता रहा है तथा निरन्तर और खुल्लम-खुल्ला वेश्यावृत्ति का रूप धारण करता जाता है .... यह प्राचीन यौन-स्वच्छन्दता ही का एक रूप है परन्तु अब यह स्वतन्त्रता केवल पुरुषों के लिए रह गई है तथा लोग इसे न केवल सहन करते हैं वरन् इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। परन्तु मौखिक रूप से विशेषत: शासकवर्ग केवल निन्दा ही करता है। इस स्वतन्त्रता से लाभान्वित होनेवाले पुरुषों को 'हैतारतरी व्यवस्था' से कोई हानि नहीं होती, इसकी चोट केवल स्त्रियों पर पड़ती है। उनसे सामाजिक रूप से सम्बन्ध-विच्छेद करके उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है .... परन्तु इससे स्वयं एक पत्नी-प्रथा के भीतर एक अन्य विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है। पति 'हतायरिज़्म' का आनन्द लूटकर अपने जीवन को रंगीन बना लेता है

---

1. हमारे सामने पुस्तक का उर्दू संस्करण है जो विदेशी किताब घर मास्को से प्रकाशित हुआ है।
2. एक लेखक का नाम जिसके अनुसंधान को फ़ैड्रिक एंगिल्स ने अपनी पुस्तक की बुनियाद बनाया है।

परन्तु पत्नी अकेली अपने भाग्य को रोती रहती है, और जिस प्रकार आधा सेब खा लेने के पश्चात् हाथ में पूरा सेब नहीं रहेगा उसी प्रकार यह भी नहीं हो सकता कि विरोधाभास का एक पहलू हो और दूसरा न हो — परन्तु ऐसा लगता है कि पुरुषों को जब तक यह शिक्षा नहीं मिली वे ऐसा नहीं सोचते थे — एक पत्नी-प्रथा के साथ दो नए व्यक्तित्व स्थायी रूप से समाज के पर्दे पर उभर आते हैं जिनका पहले कोई वुजूद न था, एक पत्नी का यार (आशना) और दूसरा क़ुरमसाक़[1], अर्थात् ग़ैर-मर्दों से आशनाई करनेवाली स्त्री का पति .... एक पत्नी-प्रथा और हैतायरिज़्म के साथ-साथ व्यभिचार भी समाज में अपरिहार्य रूप से प्रचलिति हो गया जिसे नाजाइज़ ठहराया गया, इसके लिए कठोर दण्ड दिए गए परन्तु इसे दबाया न जा सका।" (पृ. 128-130)

"अब तक हमने यह देखा कि विवाह के तीन महत्वपूर्ण रूप हैं और ये तीनों इंसान के विकास के तीन विशेष चरणों से सम्बन्धित हैं .... सभ्यता काल में एक पत्नी-प्रथा, जिसके साथ व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती है। (पृ. 145)

"क्या हमने यह नहीं देखा कि वर्तमान् युग में एक पत्नी-प्रथा और वेश्यावृत्ति में विरोधाभास होते हुए भी चोली-दामन का साथ है। दोनों एक ही सामाजिक दशा के दो रुख हैं। क्या वेश्यावृत्ति अपने साथ एक पत्नी प्रथा को मिटाए बिना समाप्त हो सकती है?" (पृ. 148)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बहुपत्नी-प्रथा के निषेध तथा एक पत्नी-प्रथा के क़ानूनी प्रचलन का स्थायी एवं अनिवार्य परिणाम नैतिक अराजकता व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति है।

बहुपत्नी-प्रथा की अनुमति एवं निषेध के विषय पर विचार करते समय

---

1. 'क़ुरमसाक़' तुर्की शब्द है जिसका अर्थ है– वह बेशर्म व्यक्ति जो अपनी पत्नी को दूसरों के पास भेजे और उसकी कमाई खाए और जिसे आम बोलचाल की भाषा में पत्नी का दलाल कह सकते हैं। (अनुवादक)

इस वास्तविकता की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि बहुपत्नी-प्रथा का एक पत्नी-प्रथा से कोई मुक़ाबला नहीं है। एक पत्नी विवाह-प्रथा की व्यवस्था चलती रही है और चलती रहेगी। बहुपत्नी-प्रथा का चाहे कितना ही प्रचलन हो जाए, परन्तु एकपत्नी-प्रथा की समाप्ति सम्भव नहीं है। समाज की बहुसंख्या एकपत्नी-प्रथा ही को अपनाएगी और अपनाने को बाध्य होगी। स्त्रियों की संख्या कभी इतनी अधिक नहीं हो सकती कि समस्त लोग एक से अधिक पत्नियाँ रख सकें।[1] न सब लोगों के पास इतने संसाधन उपलब्ध हो सकते हैं कि वे एक से अधिक पत्नियों तथा उनकी सन्तान की ज़िम्मेदारी उठा सकें। अतः मुक़ाबला बहुपत्नी-प्रथा तथा एक पत्नी-प्रथा में नहीं बल्कि बहुपत्नी-प्रथा तथा व्यभिचार में है, इन दोनों में से आप किसे समाप्त करना और किसे बाक़ी रखना चाहते हैं? एक से अधिक स्त्रियों की प्रवृत्ति रखनेवाला व्यक्ति—चाहे इस प्रवृत्ति के प्रेरणास्रोत व्यक्ति के अन्दर हों या बाहर अथवा दोनों जगह— अपनी प्रवृत्ति की तीव्रता की वजह से एक से अधिक स्त्रियों से यौन-सम्बन्ध अवश्य स्थापित करेगा। अब यह आपकी बुद्धिमत्ता पर निर्भर है कि आप उसे नैतिक और क़ानूनी रास्ता उपलब्ध कराएँ और विवाह की

---

1. कहा जा सकता है कि स्त्रियों की अतिरिक्त संख्या की कमी के कारण जब कुछ ही लोग बहुपत्नी-प्रथा से लाभान्वित हो सकते हैं तो कुछ ही लोग व्यभिचार भी कर सकते हैं। अतः एक पत्नी की व्यवस्था में व्यभिचार के आम होने की जो बात कही जाती है वह सही नहीं मालूम होती। परन्तु व्यभिचार को बहुपत्नी प्रथा जैसा मानना सही नहीं है। पति-पत्नी सम्बन्ध में स्त्री एक ही पुरुष के लिए निश्चित होती है जबकि व्यभिचार में एक स्त्री से अनेक पुरुष सम्बन्ध बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त समाज में व्यभिचार का चलन होने पर विवाहित तथा अविवाहित सभी स्त्रियाँ इस गन्दगी में लथ-पथ हो जाती हैं।

   यहाँ यह बात भी विचारणीय है कि एड्स (AIDS) की बीमारी, जो गत् 15-20 वर्षों से समस्त विश्व को भयभीत किए हुए है; मानवजाति के शुभ-चिन्तक और विचारक व वैज्ञानिक जिसका समाधान करने में असफल रहे हैं, उसका एक बहुत बड़ा कारण यही ''व्यभिचार'' (वेश्यागमन, स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध और एक स्त्री से अनेक पुरुषों का अवैध शारीरिक सम्बन्ध) ही बताया गया है, जिसके उन्मूलन में सभी समाजशास्त्री असमर्थ रहे हैं। –प्रकाशक

सुविधाएँ प्रदान करके दोनों को नियमित, सभ्य, शालीन, नैतिक तथा उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन बिताने का अवसर प्रदान करें, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे के अधिकारों को पहचानें और उनका पालन करें; या पुरुष को और पुरुष के साथ स्त्री को अनैतिक तथा लैंगिक आवारगी के गहरे गढ़े में ढकेल दें और परिणामस्वरूप समूचे समाज को इस गन्दगी में लथ-पथ होने के लिए छोड़ दें।[1] स्पष्ट रहे कि बहुपत्नी-विवाह से कुछ ही लोग लाभान्वित हो पाते हैं परन्तु व्यभिचार को सहन कर लेने के नतीजे में पूरा समाज धीरे-धीरे इस महामारी का शिकार हो जाता है।

कहा जा सकता है कि व्यभिचार एवं वेश्यावृत्ति की भी रोकथाम होनी चाहिए तथा बहुपत्नी-विवाह की भी। हम इनमें से एक का चयन क्यों करें? इसका उत्तर यह है कि पूरा मानव-इतिहास इस प्रकार के अनुभवों से ख़ाली है। क्यों कि यह नितांत अव्यावहारिक है हम किसी ऐसे इंसानी समाज को नहीं जानते जिसमें व्यभिचार और बहुपत्नी विवाह दोनों ही क़ानून द्वारा निषिद्ध रहे हों और ऐसा क़ानून सफल भी हुआ हो। हम ऐसे समाजों को तो जानते हैं जिनमें व्यभिचार घोर नैतिक तथा क़ानूनी अपराध था परन्तु उनमें बहुपत्नी-विवाह की अनुमति थी। इतिहास साक्षी है कि ऐसे समाजों से व्यभिचार एवं दुष्कर्मों का उन्मूलन हो गया था। इसी के साथ हम ऐसे समाजों को भी जानते हैं जिनमें बहुपत्नी-विवाह क़ानून द्वारा निषिद्ध है परन्तु उनमें व्यभिचार ज़ोरों पर है। पहली क़िस्म का आदर्श-समाज इस्लाम के प्रारंभिक काल में मिलता है और दूसरे प्रकार के समाज का आदर्श-रूप पाश्चात्य देशों की शक्ल में हमारे सामने है। यहाँ तक कि पाश्चात्य विचारक आवारगी और नैतिक अराजकता

---

1. आप यह नहीं कह सकते कि यह तो एक बुराई के अपरिहार्य होने के कारण उसके आगे झुकना हुआ, बहुपत्नी-विवाह कोई बुराई नहीं है। इसके विरोधी भी इसके बुराई होने की कोई दलील नहीं रखते। इसके विपरीत यह प्राकृतिक होने के साथ अनेक नैतिक बिगाड़ों की रोक थाम और बहुत सी समाजी पेचीदगियों का समाधान भी है। ऐसी चीज़ को जो व्यक्ति बुराई कहता है वह वास्तव में बुराई को नहीं जानता। बुराई बहुपत्नी-प्रथा में नहीं है वरन् कई पत्नियों के बीच न्याय न करने या स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों में है।

के बुरे परिणामों को देख-देखकर चीख़ उठे हैं तथा वे इन परिस्थितियों को बदलना चाहते हैं, परन्तु किस प्रकार? क्या वे बहुपत्नी-विवाह के साथ व्यभिचार को भी क़ानून द्वारा निषिद्ध ठहराना चाहते हैं? नहीं! वे व्यभिचार के उन्मूलन के लिए बहुपत्नी विवाह को पुनः जाइज़ और प्रचलित करना चाहते हैं। हालांकि बहुपत्नी-विवाह से पश्चिमवालों की घृणा एक खुली हुई हक़ीक़त है। डॉ. मैक फैरलैन (Dr. Mac Far Lane) कहता है :

"प्रश्न पर चाहे सामाजिक हैसियत से विचार किया जाए या धार्मिक हैसियत से, यह बात सिद्ध की जा सकती है कि बहुपत्नी-विवाह सभ्यता के उच्चतम स्तरों के विरुद्ध नहीं है। यह उपाय निर्धन, पराश्रित तथा उन पाश्चात्य स्त्रियों के मसले का हल है जिन्हें समाज में कोई नहीं पूछता जिसका एक मात्र परिवर्तित रूप बढ़ती हुई वेश्यावृत्ति, रखैलपन, और मुसीबत से भरा हुआ कुमारपन एवं कन्यापन है।" (The Case for Polygamy)

फ्रांस के यौन शास्त्र-विशेषज्ञ डा. लीबॉन (Lebon) का विचार है :

"स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक सम्बन्ध अर्थात् बहुपत्नी-विवाह की ओर वापसी अनेक बुराइयों और ख़राबियों का निवारण कर देगी। इस प्रकार-वेश्यावृत्ति, गुप्त रोग, गर्भपात, अवैध बच्चों की मुसीबत, लाखों अविवाहित स्त्रियों का दुर्भाग्य, जो दोनों जातियों के बराबर संख्या में न होने का परिणाम है, व्यभिचार तथा शत्रुता का ख़ात्मा हो सकेगा।"[1]

ऐन्थोनी एम. ल्यूडोविसी (Anthony, M.Ludovici) कहते है :

"बहुपत्नी-विवाह को समस्या के समाधान की हैसियत से पेश किया जाए तो आवेश में आ जाना, इसी के साथ यह भी महसूस करना कि उन स्त्रियों को कोई कलंक न लगेगा जो अपने बच्चों को दूध नहीं पिला सकतीं तथा इस बात से भी बे-ख़बर रहना कि एक

1. Marriage commission Report X' rayed, P. 269

पत्नी-प्रथा के कारण वेश्यावृत्ति के क्या भीषण परिणाम सामने आ रहे हैं, अश्लीलता तथा निर्दयतापूर्ण दिखावा है।''

(Woman, P.P 175, 176)

एक और पहलू से विचार कीजिए। मानव-चरित्र की महत्वपूर्ण बुनियाद लैंगिक नैतिकता है। यदि कोई व्यक्ति व्यभिचार से बचा हुआ है एवं पाकबाज़ है तो उससे जीवन के समस्त क्षेत्रों में दृढ़ चरित्र की आशा की जा सकती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति कामुकता का मारा और बे-आबरू है उससे जीवन के किसी भी क्षेत्र में दृढ़ चरित्र की आशा करना व्यर्थ है। वह अपने मनकी इच्छाओं का ग़ुलाम है और इच्छाओं और आकांक्षाओं का ग़ुलाम कभी चरित्रवान नहीं हो सकता। व्यक्ति एवं समाज के विकास के लिए नैतिक दृढ़ता और नैतिक दृढ़ता के लिए सतीत्व और पाकबाज़ी अनिवार्य है।

पश्चिम ने भौतिक विकास, आनन्दित होने, मज़े लूटने तथा स्त्री पुरुष की समानता के अबौद्धिक तथा काल्पनिक विचार के तहत यौन नैतिकता के महत्व की उपेक्षा की, जिसके परिणामस्वरूप पश्चिमी समाज नैतिक तथा सामाजिक बिगाड़ का कार्य क्षेत्र बन गया। अब पाश्चात्य विचारक नैतिक पवित्रता, सतीत्व तथा कौमार्य रक्षा के महत्व को पुनः महसूस करने लगे हैं। पुस्तक ''संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में वेश्यावृति'' का एक उद्धरण पढ़िए :

''शैतानी ताक़तें तीन हैं जिनका त्रित्व (Trinity) हमारी दुनिया पर छा गया है और ये तीनों एक जहन्नम तैयार करने में लगे हुए हैं।

(1) अश्लील साहित्य — जो महायुद्ध के पश्चात् आश्चर्यजनक गति से अपनी बेशर्मी और प्रकाशन की ज़्यादती में बढ़ता ही जा रहा है, (2) चल चित्र — जो कामुक प्रेम की भावनाओं को न केवल भड़काते हैं वरन् व्यावहारिक शिक्षा भी देते हैं। (3) स्त्रियों का गिरा हुआ नैतिक स्तर — जो उनके वस्त्रों और कभी उनकी नग्नता तथा सिग्रेट के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रयोग तथा पुरुषों के साथ प्रत्येक बन्धन से मुक्त, उनके साथ मेल-जोल के रूप में प्रकट होता है। ये तीनों चीज़ें हमारे यहाँ बढ़ती चली जा रहीं हैं और इन का परिणाम

मसीही सभ्यता तथा सामाजिकता का पतन और अन्ततः विनाश है। यदि इन्हें न रोका गया तो हमारा इतिहास भी रोम तथा उन अन्य क़ौमों की तरह होगा जिनको यही कामवासना की रसिकता, शराब, स्त्रियों और नाच-रंग वग़ैरह विनष्ट कर चुके हैं।'' (पृ. 139)

भौतिक शास्त्र की एक महिला विशेषज्ञ श्रीमती हडसन कहती हैं :

''हमारी सभ्यता की दीवारें ढह जाने को हैं, इनकी बुनियादों में कमज़ोरी आ चुकी है और इसके शहतीर हिल रहे हैं, न जाने यह भवन कब धराशायी हो जाए। हम गत कई वर्षों से देख रहे हैं कि लोग क़ानून एवं व्यवस्था की पाबन्दी करने के लिए तैयार नहीं हैं। इसके बचाव का केवल एक ही तरीक़ा बाक़ी है और वह यह कि पुरुषों और स्त्रियों के उन्मुक्त मेल-जोल पर पाबन्दी लगा दी जाए, क्योंकि इस सभ्यता के लोगों का सारा ध्यान स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों, वेश्यावृत्ति सारतः यह कि केवल यौन इच्छाओं को पूरा करने पर केन्द्रित हो चुका है। अतः इनकी समस्त रचनात्मक योग्यताएँ नष्ट हो रही हैं। इस मामले में और भी तरह-तरह की अनियमितताएँ देखने में आती हैं जैसे स्त्रियों और पुरुषों का अपने समलैंगी की ओर आकर्षित होना। इंसानी योग्यताओं का यह विनाश बड़ा चिन्ताजनक है। लैंगिक सम्बन्धों की यह दशा और उसके बुरे नतीजे देखकर हमारे ज़ेहनों में यह प्रश्न उभरता है कि क्या ये हमारी सभ्यता के मिटने की निशानियाँ हैं या उसके लक्षण! मेरी राय यह है कि ये निशानियाँ भी हैं और लक्षण भी।''[1]

यह हक़ीक़त का एक पहलू है और दूसरा पहलू यह है कि यौन आचरण की दृढ़ता जितनी महत्वपूर्ण तथा व्यक्ति एवं समाज के विकास के लिए जितनी आवश्यक है उतनी ही कठिन भी। सबसे अधिक नाज़ुक तथा ख़तरनाक इंसान की यौन इच्छा है। यदि वह एक बार अनियन्त्रित हो जाए तो आसानी से क़ाबू में नहीं आती और फिर पूरे इंसानी जीवन तथा समस्त समाज

1. देखें उर्दू पुस्तक 'औरत इस्लामी मुआशरे में'' लेखक- सैयद जलालुद्दीन उमरी पृ. 321, 322

को तबाह कर देती है और यदि पूरी तरह क़ाबू में आ जाए तो व्यक्ति एवं समाज को सुदृढ़ तथा श्रेष्ठ चरित्र का उपहार देती है। वर्तमान् युग के इंसान का दुर्भाग्य बल्कि महा दुर्भाग्य यह है कि वैचारिक, ज्ञान-सम्बन्धी सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक विकास ने इस कामुकता को नियन्त्रित करने के बजाए अति उग्र और बेक़ाबू कर दिया है। यह काला नाग अब पूरी इंसानियत को डस रहा है और कोई नहीं जो इसका उपचार कर सके।

कामेच्छा पर क़ाबू पाने तथा व्यक्ति एवं समाज को शिष्ट, सुशील तथा पाकीज़ा बनाने के लिए किसी एक उपाय का अपनाना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए सार्वभौमिक योजना की आवश्यकता है जो आन्तरिक भी हो और बाह्य भी; सुधारात्मक भी हो और वैधानिक भी। इस योजना के अंश निम्नलिखित होने चाहिएं :

(1) ख़ुदा या परमेश्वर का भय

(2) धार्मिक और नैतिक मूल्यों पर विश्वास तथा समाज में इनका आदर,

(3) कामुक भावनाएँ भड़कानेवाले तत्त्वों से वातावरण को पाक करना,

(4) व्यभिचार के, घोर पाप होने की धारणा का प्रचलन तथा भयंकर सज़ा का प्रावधान,

(5) नैतिक तथा क़ानूनी सीमाओं के अन्दर यौन सन्तुष्टि की अधिक से अधिक सहूलतें उपलब्ध कराना।

आप जितना और जिस पहलू से भी ग़ौर करें इस योजना का कोई भी अंश अनावश्यक प्रतीत नहीं होगा। ख़ुदा और आख़िरत (परलोक) का डर न हो तो क़ानून और समाज की नज़रों से बच-बचकर बुरे-से-बुरे काम किए जा सकते हैं और किए जा रहे हैं।[1] जब दीनी (धार्मिक) और नैतिक मूल्य पुराने

---

1. इस्लाम से पूर्व अरब में व्यभिचार का आम चलन था, परन्तु ख़ुदा और आख़िरत के डर के फलस्वरूप उसका बिल्कुल ही उन्मूलन हो गया। और यदि कोई इक्का-दुक्का मामला हो भी गया तो पुलिस और गवाह के बिना ही अपराधी ने स्वयं को पेश करके अपने अपराध का इक़रार कर लिया। और यह जानते हुए भी कि इसका दण्ड अत्यंत

तथा व्यर्थ के ठहरा दिए जाएँ, या उनपर से विश्वास डगमगा जाए या उनकी पकड़ ढीली हो जाए तो कामवासनाओं के मुक़ाबले में नैतिक सिद्धांतों पर जमे रहना सम्भव नहीं रहता। यदि माहौल में चारों ओर कामुकता के उत्प्रेरक तत्त्व फैले हुए हों तो शील और सतीत्व के कोमल शीशे को ठेस लगने से (और फिर चूर-चूर हो जाने से) कब तक और कैसे बचाया जा सकता है। यदि व्यभिचार के घोर पाप होने की अवधारणा न हो या संसार में उसपर कोई दण्ड न हो या हो तो मामूली सा हो तो इंसान हर्ष और आनन्द के इन क्षणों को क्यों खोएगा? मज़े लूटने और मस्ती लेने के मुक़ाबले में हलका-फुलका कष्ट या दण्ड भुगत लेना कोई मँहगा सौदा नहीं है।

इसी प्रकार यदि नैतिक और क़ानूनी सीमा में रहते हुए यौन-तृप्ति की सहूलतें न हों और इस दायरे को संकीर्णतम बना दिया जाए तो लोग सीमोल्लंघन करने को बाध्य होंगे और इसका दायित्व उन लोगों पर होगा जिन्होंने इंसानी प्रकृति एवं स्वभाव का ध्यान किए बिना नैतिक एवं क़ानूनी दायरों को व्यर्थ ही तंग कर दिया था। इस क़ानून के तोड़ने पर अपराधियों को दण्ड भी नहीं दिए जा सकेंगे, क्योंकि सहूलतों की परिधि को तंग करके आपने उन्हें फ़ित्ने और मुसीबत में डाला है। ऐसी दशा में कठोर दण्डों के औचित्य को कौन स्वीकार करेगा तथा यह आशंका भी है कि ऐसे कानूनों तथा दण्डों के विरोध में जनसाधारण विद्रोह कर बैठे।

पश्चिमी देशों का दुर्भाग्य यह है कि वहाँ उपरोक्त योजना के इन अंशों में से कोई भी अंश नहीं पाया जाता। अधर्मवाद की भीषण आँधी ने परमेश्वर के डर और परलोक के भय का उन्मूलन कर दिया है और धार्मिक नैतिक मूल्यों को ऐसा आघात पहुँचाया कि लोग इनका इनकार ही करने लगे। विशेष रूप से सतीत्व एवं कौमार्य-रक्षा की ख़ूब हँसी उड़ाई गई। जिन लोगों ने इन मूल्यों का इनकार न किया उनके जीवन से उनकी पकड़ ढीली पड़ गई। राज़नैतिक, आर्थिक एवं सामूहिक जीवन से धर्म और नैतिकता को बिल्कुल निकाल दिया

कठोर है, फिर भी जहन्नम की यातना से बचने के लिए सज़ा के लागू करने का आग्रह किया और अपने ऊपर सज़ा को लागू करा लिया। — प्रकाशक

गया, पूरा माहौल अशान्त तथा व्यभिचार एवं आवारगी के लिए बड़ी हद तक अनुकूल हो गया। विवाह और तलाक़ को पेचीदा बना दिया गया, बहुपत्नी-विवाह की सुविधा क़ानून द्वारा समाप्त कर दी गई, व्यभिचार दण्डनीय अपराध न रहा, इतना ही नहीं, वरन् उसके दोष तथा पाप होने की धारणा भी धीमी होते-होते समाप्त हो गई। इसके पश्चात् व्यभिचार तथा यौन सम्बन्धी अश्लील हरकतों की ऐसी भरमार हुई कि धरती व आकाश ने किसी भी युग तथा किसी भी सभ्यता में ऐसे दृश्य न देखे होंगे।

यह उन देशों का हाल है जहाँ मसीहियत एक धर्म की हैसियत से मौजूद थी और है तथा जहाँ वैवाहिक सम्बन्ध का चर्च से सीधा सम्बन्ध है। वही मसीहियत जिसके महान् पेशवा हज़रत मसीह (अलै.) ने फ़रमाया था :

> "तुम सुन चुके हो, तुमसे कहा गया था 'व्यभिचार न करना', परन्तु मैं तुमसे यह कहता हूँ, जो कोई पुरूष किसी स्त्री को बुरी नज़र से देखे तो , वह अपने मन में उससे व्यभिचार कर चुका।[1] यदि तेरी दाहिनी आँख तुझे ठोकर खिलाए तो उसे निकाल कर अपने पास से फेंक दे, क्योंकि तेरे लिए यही बेहतर है कि तेरे शरीर का केवल एक अंग नष्ट हो किन्तु तेरा सारा शरीर नरक में न डाला जाए।" (बाइबल, मत्ती, 5 : 27-29)

नैतिकता के इतने महान उद्घोषक के माननेवाले आँख ही नहीं वरन् कान, हाथ, पैर, हृदय तथा कामेन्द्रियाँ, सब के व्यभिचार में लथ-पथ हो गए और अब वे इससे घिन भी नहीं खाते, वे गर्व, आनन्द, हर्ष तथा उल्लास की मिली-जुली भावनाओं के साथ इस दुर्गन्धपूर्ण एवं गन्दे हौज़ में डुबकियाँ खा रहे हैं। उपरोक्त योजना के पाँचों अंशो को समाप्त करने का इसके अतिरिक्त

---

1. इसी हक़ीक़त को हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने इन शब्दों में व्यक्त किया है : "आँख का व्यभिचार 'बुरी दृष्टि' है, कानों का व्यभिचार सुनना है, ज़बान का व्यभिचार वार्ता करना है हाथ का व्यभिचार दुस्साहसपूर्ण हाथ बढ़ाना, पैर का व्यभिचार प्रयास करना है, और हृदय इच्छा व कामना करता है तथा लिंगेन्द्रियाँ (या तो) इस का साथ देती हैं अथवा साथ देने से इंकार करती हैं।" (हदीस : बुखारी)

और क्या परिणाम हो सकता था ?

पाश्चात्य सभ्यता के विपरीत यह योजना इस्लाम में अपने पाँचों अंशों सहित मौजूद है। इस्लाम ख़ुदा और आख़िरत के विश्वास से लोगों के दिलों को भर देता है तथा आख़िरत की पूछगच्छ और जहन्नम की घोर यातना का डर तथा धार्मिक और नैतिक मूल्यों का महत्व एवं लाभ पूरे ज़ोर के साथ दिल और दिमाग़ में बिठाता है। इन मूल्यों की बुनियाद पर जीवन की सर्वव्यापी व्यवस्था निर्मित करके देता और इंसान को यह विश्वास दिलाता है कि इस व्यवस्था को अपनाने में लोक-परलोक की सफलता और उससे विमुखता में दुनिया और आख़िरत का विनाश निहित है। वह माहौल को यौन उत्प्रेरक तत्त्वों और कामुक प्रवृत्तियों से अन्तिम सीमा तक पाक-साफ़ रखता है। वह गन्दे गीतों, अश्लील पुस्तकों, हुस्न और इश्क़ की गन्दी कहानियों, नैतिकता विरोधी फ़िल्मों, निर्लज्ज सौन्दर्य की अश्लीलताओं और स्त्री-पुरुष के अवैध मेल-जोल को नैतिक दृष्टि से हराम तथा क़ानूनी दृष्टि से निषिद्ध ठहराता है। वह नैतिक और क़ानूनी सीमाओं के अन्दर यौन-तृप्ति की अधिक-से-अधिक सुविधाएँ प्रदान करता है। वह विवाह को अत्यन्त सरल, तलाक़ को परिस्थिति के अनुसार आसानी से संभव और बहुपत्नी प्रथा को कुछ शर्तों और सीमाओं के साथ जाइज़ ठहराता है। ताकि यदि कोई व्यक्ति किसी निजी या सामाजिक हित के तहत अथवा यौनाकर्षण और हार्दिक प्रेम के कारण किसी स्त्री या एक से अधिक स्त्रियों से अपने सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मजबूर पाता है तो वह चोरी छिपे ऐसा करके नैतिक सीमाओं को न तोड़े बल्कि विवाह की नैतिक और शालीन विधि अपनाए और इस तरह अपने आपको तथा समाज को नैतिक गन्दगी एवं यौन स्वच्छन्दता से बचा ले।

इस पूर्ण सुधारात्मक एवं प्रशिक्षणात्मक कार्यक्रम और इन अनन्त सुविधाओं के बावजूद जो व्यक्ति नैतिक सीमाओं को तोड़ता है और उसका नीच स्वभाव उसे व्यभिचार तथा आवारगी की नापाकी में लिथड़ने और दूसरों को लथेड़ने पर उभारता है, तो इस्लाम उसके लिए आख़िरत से पहले दुनिया ही में कठोर दण्ड प्रस्तावित करता है। ऐसा दण्ड जिसके विचार ही से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

यह है पाकीज़ा और नैतिकतापूर्ण समाज बनाने की इस्लाम की योजना! आप महसूस करेंगे कि इसमें बहुपत्नी-विवाह की कड़ी ठीक अपने स्थान पर फ़िट है और यदि इसे हटा दिया जाए तो पूरी योजना बिखर जाएगी। बहुपत्नी-विवाह की अनुमति वापस लेने के पश्चात् आप व्यभिचार के लिए कठोर सज़ा प्रस्तावित न कर सकेंगे और फिर व्यभिचार के चलन को केवल उपदेश और नसीहत से हरगिज़ न रोका जा सकेगा।

वर्तमान परिस्थितियों में पश्चिम ही नहीं वरन् पूर्व में भी इस योजना के अंश बिखरते दिखाई दे रहे हैं। ख़ुदा और आख़िरत का डर यदि दिलों से निकला नहीं है तो धीमा अवश्य पड़ गया है और इसी के साथ धार्मिक और नैतिकमूल्यों पर से विश्वास और उसका सम्मान उठ चुका है और जो कुछ शेष है वह भी उठता जा रहा है, माहौल अत्यधिक भड़काऊ तथा काम-प्रेरक हो गया है, व्यभिचार की स्वतन्त्रता है तथा इसका दण्ड एक-आध मुस्लिम देशों के अतिरिक्त संसार भर में कहीं भी नहीं है। ग़ैर-मुस्लिम शासक ही नहीं वरन् मुसलमान शासकों में भी यह दृष्टिकोण आम है कि ये सज़ाएँ असभ्य एवं निर्दयतापूर्ण हैं।

इन परिस्थितियों में क्या यह बात बुद्धिमत्ता की होगी कि हम योजना के बचे-खुचे अंशों — बहुपत्नी-विवाह तथा निकाह और तलाक़ की सहूलतों को समाप्त कर दें ? यदि हमने ऐसा प्रयास किया तो इससे क्या प्राप्त होगा ? वही कुछ मिलेगा कि जो नैतिक आवारगी पहले ही से बहुत बढ़ चुकी है, उसकी रफ़तार और तेज़ हो जाएगी। जो लोग नैतिक सीमाओं में रहकर अनैतिक हरकतों से बचते थे वे भी नैतिकता भंग करने पर तुल जाएँगे और अच्छे एवं बुरे सभी, गन्दगी के दुर्गंधपूर्ण गढ़े में आगे-पीछे जा गिरेंगे !

इसमें सन्देह नहीं कि समाज का सुधार तो पूरी योजना पर अमल करने ही से होगा परन्तु यह बात किसी भी प्रकार सही न होगी कि पूरी योजना मौजूद न होने का बहाना लेकर हम पश्चिम के प्रभावाधीन योजना के बचे-खुचे अंशों को भी नष्ट कर दें। जबकि स्वयं पश्चिम में इस अनुभव के परिणाम अति कष्टदायक एवं भीषण निकले हैं और बड़े-बड़े विचारक उनसे तंग आकर

बहुपत्नी-विवाह की ओर लौटने की सलाह दे रहे हैं।

हमारे सामने योजना का केवल एक अंश नहीं है वरन् हमारे सम्मुख एक पवित्र और नैतिकता से परिपूर्ण समाज का निर्माण है, इसके लिए हम इस्लाम की पूरी सुधारात्मक एवं कानूनी योजना को अपने देश तथा पूरे विश्व में लागू और प्रचलित करना चाहते हैं और इसके एक अनिवार्य अंश की हैसियत से उन सुविधाओं को बाक़ी रखना चाहते हैं जो यौन-इच्छाओं की सन्तुष्टि के बारे में इस्लाम ने दी हैं। इन सुविधाओं में से एक सुविधा बहुपत्नी-विवाह की अनुमति की भी है, यह अनुमति इस समय भारत के मुस्लिम पर्सनल लॉ में मौजूद है और इस्लाम की सार्वभौमिक योजना के तहत हमें इसकी अनुमति — सशर्त अनुमति — के बरक़रार रहने पर आग्रह है।

बहुपति-प्रथा क्यों नहीं?

यह बात कही जा सकती है कि इस तर्क की बुनियाद पर तो बहुपत्नी-विवाह ही नहीं, बहुपति प्रथा (Polyandry) की भी इजाज़त होनी चाहिए। यदि आप पुरुष को नैतिक बिगाड़ से बचाने के लिए एक से अधिक स्त्रियों से शादी की अनुमति देते हैं तो स्त्री को नैतिक बुराइयों से बचाने के लिए एक से अधिक पतियों की अनुमति क्यों नहीं देते ?

यह तर्क प्रकट में जितना ज़ोरदार दिखाई पड़ता है, वास्तव में इतना ज़ोरदार है नहीं।

पहली बात यह है कि वर्तमान युग के विशेषज्ञ जिस पाशविक प्रकृति की रौशनी में इंसान की यौन समस्याओं को हल करते हैं, वह प्रकृति बहुपति प्रथा का समर्थन नहीं करती है। जानवरों में एक पत्नी प्रथा का भी प्रचलन है और बहुपत्नी प्रथा का भी। परन्तु बहुपति प्रथा का ज़रा भी प्रचलन नहीं है। मानव शरीर रचना शास्त्र (Anthropology) का प्रसिद्ध विशेषज्ञ लीटोरन्यू (Letoourneau) कहता है :

> "हम जानवरों में अस्थायी लैंगिक मेल-जोल (सहवास) के तरीक़े पाते हैं जिनकी समाप्ति पर नर पूरी तरह मादा से बेपरवाह हो जाता

है। परन्तु स्थायी सहवास के ऐसे तरीक़े भी मिलते हैं, विशेष रूप से पक्षियों में जिनके लिए 'पति-पत्नी' का शब्द प्रयोग करना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा, परन्तु ऐसा बिल्कुल स्पष्ट नहीं होता कि हैवानों में बहुपति प्रथा एक मादा का कई नरों के बीच दृढ़ एवं स्थायी लैंगिक सम्बन्ध — का प्रचलन रहा हो।" (Evolution of Marriage and Family P. 35)

फ्रैड्रिक ऐंगिल्स "परिवार, निजी मिलकियत तथा राज्य का प्रारम्भ" में लिखता है :

"लीटोरन्यू ने हैवानी दुनिया से अनेक वृत्तांत एकत्र करके (विवाह तथा परिवार का विकास 1888 ई.) यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि हैवानों में भी पूरी तरह स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध प्रारंभिक तथा हीनस्तर की चीज़ है... यदि हम दूध पिलानेवाले जानवरों ही को देखें तो उनमें हमें जीवन के सभी रूप मिलेंगे। स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों के साथ- साथ सामूहिक विवाह की ओर भी संकेत मिलते हैं, एक नर के लिए कई मादाएँ और एक नर और एक मादा का सम्बन्ध भी मिलता है, परन्तु उनमें एक मादा से कई नरों का सम्बन्ध[1] नहीं पाया जाता — यह केवल इंसानों ही में संभव था — यहाँ तक कि हमारे सबसे निकटतम सम्बन्धियों अर्थात् चौपायों में भी नर और मादा के मिलने के अधिक-से-अधिक सम्भव तरीक़े पाए जाते हैं और यदि हम इस क्षेत्र को और भी सीमित कर दें और केवल चार इंसान जैसे लंगूरों को लें, तो लीटोरन्यू हमें बताएगा कि इनमें कहीं एक नर और एक मादा का सम्बन्ध पाया जाता है और कहीं एक नर के साथ कई मादाएँ होती हैं।" (पृ. 59,60)

"इस से यह स्पष्ट है कि हैवानी समाजों से निस्सन्देह इंसानी समाजों के विषय में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं परन्तु केवल

---

1. सम्बन्ध से अभिप्रेत जैसा कि लीटोरन्यू ने स्पष्ट किया, सुदृढ़ और स्थायी सम्बन्ध है, अस्थायी सम्बन्ध बहुपति प्रथा नहीं, वरन् स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध है।

नकारात्क विचार से; जहाँ तक हमें ज्ञात है, रीढ़ की हड्डीवाले ऊंची. नस्ल के जानवरों में परिवार की केवल दो शक्लें पाई जाती हैं, एक नर कई मादाएँ या एक नर और एक मादा के जोड़े। दोनों शक्लों में बालिग़ नर या पति एक ही हो सकता है।" (पृ. 62,63)

दूसरी बात यह है कि पुरुष जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति रखता है, स्त्री स्वभावतः इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं रखती। इसके विपरीत वह स्वभावतः एक पति ही की ओर आकर्षित रहती है। यही कारण है कि मानव इतिहास में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन हर काल, हर क़ौम और हर सभ्यता में रहा है परन्तु एक स्त्री के कई पति होने का प्रचलन यदा-कदा और केवल कुछ असभ्य क़ौमों तक सीमित है। एक प्रसिद्ध यौन-शास्त्री डा. मरशर (Mercier), ने कहा है :

"स्त्री स्वाभाविक रूप से एक पति की प्रवृत्ति रखती है जबकि पुरुष बहुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति रखता है।" (Conduct and It's Disorders, Biologically Considered P. 292, 293)

दूसरा यौन शास्त्र–विशेषज्ञ एडवर्ड हार्ट मैन (Edward Hartman) कहता है :

"पुरुष की स्वाभाविक प्रवृत्ति बहुपत्नी-विवाह के पक्ष में है और स्त्री की स्वाभाविक प्रवृत्ति एक पति के पक्ष में।"

(Marriage Commission Report X' rayed, P.209)

प्रसिद्ध यौन-मनोवैज्ञानिक 'हैवलॉक एलिस' (Havelock Ellis) यह बताने के पश्चात् कि बहुपत्नी-विवाह का प्रचलन मानव-सभ्यता के हर चरण में रहा है, कहता है :

"Polygandry (पॉलीगैंड्री) अर्थात् एक स्त्री का एक से अधिक पुरुषों से लैंगिक सम्बन्ध तुलनात्मक रूप से दुर्लभ सा रहा है और उसके कारण समझ में आने योग्य हैं। पुरुष स्त्री के मुक़ाबले में आर्थिक एवं क़ानूनी दृष्टि से यह स्थिति रखता है कि वह अपने

आपको केन्द्र बनाकर एक परिवार की व्यवस्था करे। पुरुष के विपरीत स्त्री प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रूप से एक ज़माने में कुछ ख़ास अवधि तक पति-पत्नी सम्बधों के योग्य नहीं रहती, इसके अतिरिक्त एक स्त्री के विचारों एवं उसके प्रेम का केन्द्र उसके बच्चे होते हैं। इस बात से हटकर, पुरुष के जीव-विज्ञान सम्बन्धी हालात जितना समर्थन बहुपत्नी-विवाह का करते हैं, उतना समर्थन स्त्री के विज्ञान सम्बन्धी हालात बहुपति-प्रथा का उतना समर्थन नहीं करते।'' (Studies in the Psychology of Sex, P..497)

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-14 में 'Marriage' (विवाह) शीर्षक के तहत एक उपशीर्षक 'Polyandory' है जिसके अंतर्गत् लिखा है :

''बहुपतीत्व (Polygandry) उस इकट्ठेपन का नाम है जिसमें कई पुरुष एक औरत या स्त्री के साथ पति-पत्नी सम्बन्ध में क़ानून द्वारा जुड़ते हैं। शादी का यह रूप विभिन्न स्वरूपों-प्रकारों में से सबसे अधिक दुर्लभ स्वरूप है। .... तथा यह रूप प्राचीन तथा आदिम (Primitive) क़ौमों में से किसी भी क़ौम में नहीं पाया जाता। यह लगभग पूरी तरह दक्षिण भारत के पहाड़ी क्षेत्र और मध्य ऐशिया ही तक सीमित है। इसमें बहुत सीमित अपवाद भी है अर्थात् अफ़्रीका के एक क़बीले बाहिमा (Bahima) और कुछ स्कीमुओं में भी इस तरीक़े का प्रचलन है, परन्तु बहुत ही दुर्लभ।''

लेटूर्न्यो (Letoorneau) प्रसिद्ध मानवशास्त्री का कहना है :

''निस्सन्देह बात केवल इतनी ही नहीं है कि बहुपति-प्रथा हमारे बीच दुर्लभ है बल्कि निन्दित एवं बुरी भी है तथा अपराधपूर्ण मानी जाती है और अपने आपको छिपाने पर बाध्य होती है। कई पुरुष एक स्त्री के क़ानूनी और नियमित पति हों, इस प्रकार कि सब लोग पति ही के नाम से उससे वैवाहिक सम्बन्ध रखते हों और इसे खुल्लम-खुल्ला माना जाता हो, इस चीज़ से हमारी भावनाओं और हमारी नैतिकता को बड़ा धक्का लगता है।''(Evolution of Marriage

and family P.74)

बहस को समाप्त करते हुए वह और अधिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है :

> "सारांश यह है कि बहुपति-प्रथा एक अपवादितं वैवाहिक रूप है जो उतनी ही दुष्प्राप्य एवं दुर्लभ है जितना बहुपत्नी-विवाह प्रचलित है, इसकी गिनती प्रयोगात्मक एवं पारिस्थितिक विवाहों में होनी चाहिए।" (पृ. 88)

इन उद्धरणों से निम्नलिखित बातें सामने आती हैं :

(1) स्त्री मानसिक एवं स्वाभाविक रूप से बहुपति की नहीं वरन् एक पति की प्रवृत्ति रखती है।

(2) स्त्री की जीव विज्ञान सम्बन्धी (शारीरिक) दशा बहुपति के बजाए एक पति प्रथा का समर्थन करती है।

(3) आर्थिक और क़ानूनी स्थिति भी बहुपति के बजाए एक पति प्रथा के समर्थन में है।

(4) बहुपति-प्रथा का प्रचलन यदा-कदा तथा दुर्लभ रहा है और वह भी कुछ असभ्य एवं आदिभ क़ौमों में।

(5) यह नैतिक रूप से घोर निन्दनीय एवं आपराधिक हरकत समझी जाती है तथा यह सभ्य लोगों की भावनाओं को झझकोर कर रख देती है।

तीसरी बात यह कि वैवाहिक सम्बन्धों के उद्देश्यों में से दो महत्वपूर्ण उद्देश्य वंश की सुरक्षा एवं विरासत की व्यवस्था भी हैं। ये दोनों उद्देश्य एक पति एवं बहुपत्नी दोनों प्रथाओं में समाप्त नहीं होते। बच्चे की माता और पिता दोनों ही निश्चित होते है जिसके कारण वंश एवं विरासत का मामला गडमड नहीं होने पाता। इतना ही नहीं, बल्कि बच्चे की देख-भाल तरबीयत तथा पालन-पोषण में कोई रुकावट नहीं पड़ती, यह भी वैवाहिक सम्बन्धों का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। माता बच्चे का पालन-पोषण करती है तथा पिता उसका भरण-पोषण एवं

निगरानी करता है।

इसके विपरीत बहुपति-प्रथा में विरासत और वंश का मामला बिल्कुल गडमड हो जाता है। स्त्री के कई पति हों तो इस बात के जाँचने का कोई तरीक़ा नहीं होता कि बच्चा किसके वीर्य से है। इस स्थिति में मान लीजिए कि किसी एक व्यक्ति को उसका पिता ठहरा दिया जाए और बच्चे का भरण-पोषण तथा उसकी निगरानी उस के सिर डाली दी जाए और बहुपति प्रथा में इसी प्रकार काम चलाया जाए परन्तु स्पष्ट है कि यह एक काल्पनिक कार्यवाही होगी।

बहुपति प्रथा के विषय में कहा जा सकता है कि इस प्रथा में वंश तथा विरासत पिता से नहीं वरन् माता से चलती है। अत: वंश एवं विरासत के गडमड होने की बात ग़लत है। फ़्रैड्रिक एंगिल्स लिखता है :

> ''एक-एक स्त्री पर संयुक्त रूप से कई-कई पुरुषों का क़ब्ज़ा होने लगा अर्थात् बहुपति प्रथा का प्रचलन हो गया। फिर इसका परिणाम यह हुआ कि बच्चे की माता तो मालूम रहती थी परन्तु 'पिता कौन है' यह कोई न जान सकता था। अत: वंश केवल माता से चलता था तथा इस बारे में पिता का कोई महत्व नहीं था अर्थात् माता सम्बन्धी हक़ क़ायम था।'' (ख़ानदान, ज़ाती मिल्कियत और रियासत का आग़ाज़, पेज 21)

परन्तु इस प्रकार की बातें ख़ुद को धोखा देने से ज़्यादा कुछ नहीं हैं। बहुपत्नी-विवाह हो या एक पत्नी-विवाह हो या स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध तथा वेश्यावृत्ति, प्रत्येक दशा में माता जानी पहचानी और निश्चित होती है। अत: प्रश्न माता के नियत होने का नहीं वरन् पिता के नियत होने का है। बहुपत्नी तथा एकपत्नी दोनों प्रथाओं में पिता ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार इन दोनों प्रथाओं में बच्चे के वंश तथा विरासत का सम्बन्ध माता और पिता दोनों से होता है, जबकि बहुपति, स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध, तथा वेश्यावृत्ति में बाप के मालूम होने का कोई तरीक़ा नहीं हैं। अत: वंश का क्रम माता से चलता है और विरासत उसी से मिलती है।

इस विषय में यह बात कही जा सकती है कि यदि स्त्री पाकदामन व

साध्वी न हो तो बच्चा पति के अतिरिक्त किसी और का हो सकता है। मानो बहुपत्नी-प्रथा तथा एक पत्नी-प्रथा दोनों ही में वंश और विरासत का मामला गडमड हो सकता है, और होता है। हमें इस शंका से इनकार नहीं है परन्तु इसकी ज़िम्मेदारी बहुपत्नी या एक पत्नी प्रथा पर नहीं वरन् स्त्री के एक पुरुष के अतिरिक्त कई पुरुषों से सम्बन्धों पर है जिसे आप स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध या बहुपति के विभिन्न बनावटी रूप या चाहे कुछ और कह लें। यदि यह स्थिति उत्पन्न न हो तो विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि बच्चा अमुक व्यक्ति या पुरुष का है।[1] परन्तु बहुपति प्रथा में तो स्वयं माता भी यह नहीं बता सकती कि बच्चा किसका है ? क्या यह स्थिति हरामी बच्चे की स्थिति से कुछ भी भिन्न है ? और क्या इससे वंश और विरासत की व्यवस्था अस्त-व्यस्त नहीं हो जाती ?

वैवाहिक सम्बन्धों के उद्देश्यों में सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य परिवार की व्यवस्था बनाए रखना है। यदि परिवार की व्यवस्था बाक़ी न रहे या अस्त-व्यस्त हो जाए तो विवाह का महत्व समाप्त हो जाता है — वैवाहिक सम्बन्धों और स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों में यही अन्तर है कि एक स्थिति में परिवार की रचना होती है और दूसरी स्थिति में परिवार की रचना नहीं हो पाती — बहुपत्नी-विवाह हो या एकपत्नी-विवाह, दोनों स्थितियों में पुरुष परिवार का मुखिया होता है और पत्नी तथा बच्चे उसके मातहत होते हैं। जिस प्रकार कोई संस्था बिना व्यवस्थापक तथा उसके आज्ञापालन के नहीं चल सकती उसी प्रकार परिवार की व्यवस्था एवं स्थायित्व के लिए एक मुखिया तथा उसका आज्ञापालन अनिवार्य है। ख़ानदान या परिवार इंसान की उत्पत्ति का बड़ा नाज़ुक तथा पेचीदा कारख़ाना है, यदि इसकी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाए तो मानव-उत्पत्ति के उद्देश्य को अत्यन्त क्षति पहुँचेगी, यही नहीं, वरन् परिवार राज्य का संक्षिप्त तथा छोटा-सा रूप तथा उसकी बुनियादी इकाई है। परिवार की व्यवस्था के अस्त व्यस्त होने से समाज तथा राज्य दोनों का कमज़ोर हो

1. इस प्रकार शंका व्यक्त करना ही ठहरा तो माता के विषय में भी शंका व्यक्त की जा सकती है। सामाचार पत्रों में इस प्रकार की घटनाएँ आई हैं कि अस्पताल की नर्सों ने दो स्त्रियों के बच्चे बदल दिए तथा बाद में रहस्योद्घाटन हुआ।

जाना निश्चित है।[1] अतः परिवार का एक मुखिया होना न केवल परिवार के स्थायित्व के लिए भी आवश्यक है बल्कि समाज और राज्य के स्थायित्व के लिए भी ज़रूरी है।

बहुपति-प्रथा में एक स्त्री का सम्बन्ध कई पुरुषों से होता है। प्रश्न यह है कि स्त्री इन सबका आज्ञापालन कैसे करेगी ? पारिवारिक मामलों में किसकी मर्ज़ी चलेगी ? इंसानों की उत्पत्ति के इस कारख़ाने का मुखिया कौन होगा ? क्या आपने किसी ऐसी संस्था का नाम सुना है जिसके व्यवस्थापक तथा प्रबन्धक कई व्यक्ति हों या जिसका कोई प्रबन्धक व व्यवस्थापक न हो ?

इस बारे में कहा जा सकता है कि बहुपति-प्रथा में पुरुष मुखिया नहीं होता वरन् स्त्री होती है। अतः कई मुखिया होने का प्रश्न ही नहीं उठता। परिवार का मुखिया एक ही होगा, और वह स्त्री होगी जैसा कि मातृक परिवार में होता है।[2]

परन्तु यह बात दो पहलुओं से सही नहीं है। एक यह कि मातृक परिवार का तरीक़ा सभ्यता से पूर्व का है और वह भी अपवाद के रूप में। सभ्यता का विकास पैतृक व्यवस्था के तहत हुआ है और समस्त सभ्य क़ौमों में यही तरीक़ा प्रचलित रहा है, और प्रचलित है। यह इस बात का प्रमाण है कि पैतृक व्यवस्था ही सही है और इसी से मानवता एवं सभ्यता का विकास जुड़ा हुआ है। तो क्या हम बहुपति-प्रथा के अप्राकृतिक तरीक़े को अपनाकर सभ्यता से पूर्व की स्थिति की ओर लौटना चाहते हैं ?

दूसरी बात यह है कि बहुपति-प्रथा का तरीक़ा मातृक परिवार में तो

---

1. साम्यवादियों ने रूस में शुरू-शुरू में वैवाहिक सम्बन्धों तथा परिवार को समाप्त करने और स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को प्रचलित करने का अभियान चलाया था— और यह बात कार्ल मार्क्स तथा एंगिल्स की शिक्षाओं के ठीक अनुकूल थी— परन्तु उन्हें शीघ्र ही अनुमान हो गया कि यह अभियान समाज और राज्य की जड़ें उखाड़ फेंकेगा। अतः उन्होंने इस अभियान को वापस ले लिया।
2. मातृक परिवार (Maternal Family) जिसमें परिवार की मुखिया माता हो। पैतृक परिवार (Paternal Family) जिसमें परिवार का मुखिया पिता हो।

चल सकता है, अतः यदि कुछ लोगों को यह तरीक़ा पसन्द है तो उनके लिए आवश्यक है कि वे सभ्यता से छुटकारा पा जाएँ, मातृक परिवार प्रथा को अपनाएँ और फिर उसकी "बरकतों और परिणामों" का अनुभव करें, परन्तु यदि वे चाहते हैं कि .वर्तमान सभ्य संसार में रहकर, जिसका पूरा ढाँचा पैतृक परिवार प्रथा पर टिका है,. आधुनिक सभ्यता को अपनाते हुए बहुपति-प्रथा को अपनाएँ तो इस बकवास का इसके अतिरिक्त कोई परिणाम न निकलेगा कि परिवार तथा सभ्यता की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाएगी और अन्ततः राज्य व मानवता की जड़ें खोखली हो जाएँगी।

न्याय की स्थापना

नैतिकता की सुरक्षा के तहत बहुपति-प्रथा की बहस व्यवहित वाक्य के रूप में — और यह व्यवहित वाक्य आवश्यक और अवसरानुकूल भी था — बीच में आ गई थी। हमारी मूल वार्ता चल रही थी कि बहुपत्नी-प्रथा किन-किन नैतिक तथा सामाजिक पेचीदगियों का समाधान है। अब हम फिर अपने मूल विषय की ओर लौटते हैं।

बहुपत्नी-विवाह के विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि यह न्याय के विरुद्ध है। आख़िर यह अत्याचार नहीं तो और क्या है कि एक स्त्री के मुक़ाबले में उस की सौत को लाकर स्त्री के चैन और सुकून को विनष्ट कर दिया जाए और पहली पत्नी तथा उसकी सन्तान को निस्सहाय तथा दयनीय दशा में धकेल दिया जाए? यह खुला हुआ ज़ुल्म है जिसे किसी भी तरह सहन नहीं किया जा सकता। यह अन्यायपूर्ण प्रथा यदि अब से पहले प्रचलित थी तो इसका कारण यह था कि स्त्री का विवेक जागृत न था, न उसे अपने आपका तथा अपने अधिकारों का एहसास था। अब चूँकि स्त्री ने अपने आपको तथा समाज में अपने स्थान को पहचान लिया है और पुरुष के अत्याचारों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई है तो ऐसी अन्यायपूर्ण प्रथाएँ खत्म हो कर रहेंगी!

यह है वह बात जो मंचों, प्रेस, पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्य के द्वारा पूरा ज़ोर देकर कही जाती है तथा इंसानियत, न्याय एवं स्त्रियों से सहानुभूति रखनेवाले लोग गंभीरता से सोचने लगते हैं कि वास्तव में इस खुले हुए ज़ुल्म

एवं अन्याय का उन्मूलन होना चाहिए। जबकि वस्तुस्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है, नारी जाति पर अत्याचार बहुपत्नी-विवाह की अनुमति बरक़रार रहने में नहीं वरन् इसके निषेध में है।

यदि बहुपत्नी-विवाह के निषेध का यह परिणाम निकलता होता कि पुरुष अपनी एक पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित न कर पाता तो यह बात किसी न किसी हद तक ध्यान देने योग्य हो सकती थी। परन्तु ऊपर यह बात विस्तार पूर्वक आ चुकी है कि बहुपत्नी-विवाह के क़ानूनी निषेध से यह अपेक्षित परिणाम कभी नहीं निकला और न निकल सकता है। इसके विपरीत होता यह है कि बहुपत्नी-प्रथा तो समाप्त हो जाती है परन्तु उसका स्थान स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध, रखैलबाज़ी तथा वेश्यावृत्ति का प्रचलन ले लेता है।

बहुपत्नी-प्रथा से कुछ ही लोग लाभान्वित होते हैं — क्योंकि इसके साथ क़ानूनी, सामाजिक तथा नैतिक दायित्व जुड़े हुए हैं — अतः इसका अच्छा या बुरा प्रभाव केवल कुछ ही स्त्रियों तथा घरानों तक सीमित रहता है। परन्तु स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों के साथ कोई नैतिक तथा क़ानूनी दायित्व नहीं होता-अतः धीरे-धीरे समाज के समस्त वर्ग इस रंगीन शौक़ को अपना लेते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक स्त्री ज़ुल्म एवं अत्याचार का निशाना बन जाती है।

बहुपत्नी-प्रथा के परिणामस्वरूप यदि उसकी क़ानूनी और नैतिक ज़िम्मेदारियाँ पूरी की जाएँ, तो शायद ही कोई घर-बरबाद हो, जबकि स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध, व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति से अनगित घर विनष्ट हुए हैं और हो रहे हैं।

बहुपत्नी-प्रथा में स्त्री जानती है कि उसकी सौत कौन है तथा पुरुष उसके लिए तथा उसकी सौत के लिए क्या कर रहा है ? यदि वह सौत के साथ विशेष व्यवहार करे तो स्त्री उसके विरुद्ध समाज और अदालत से न्याय-याचनां कर सकती है; परन्तु स्वच्छन्द एवं गुप्त यौन सम्बन्धों में स्त्री को पता ही नहीं होता कि उसके पति का सम्बन्ध किन-किन स्त्रियों से है और उसका रवैया उन

स्त्रियों के साथ क्या है ?

ये हैं वे परिणाम जो हज़ारों वर्षों के इंसानी अनुभवों से प्राप्त हुए हैं। इनके प्रकाश में सरलतापूर्वक तय किया जा सकता है कि बहुपत्नी-प्रथा की सीमित तथा सशर्त अनुमति से स्त्रियों पर ज़ुल्म का द्वार खुलता है या बंद होता है ? निस्संदेह, सशर्त बहुपत्नी विवाह-प्रथा से स्त्रियों पर से अत्याचार एवं ज़ुल्म का द्वार बंद होता है।

यदि आप चाहते हैं कि वेश्यावृत्ति, रखैलबाज़ी और स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों के घातक तथा अत्याचारी तरीक़ों से स्त्री और समाज को छुटकारा मिले तो आपको बहुपत्नी-प्रथा की गुंजाइश रखनी पड़ेगी और यदि बहुपत्नी-प्रथा के क़ानूनी निषेध पर अड़े रहे तो याद रखें कि उपरोक्त कामतृप्ति के ज़ालिमाना तरीक़े समाज में फैलकर रहेंगे और आप किसी भी प्रकार से उनकी रोक–थाम नहीं कर सकते। कोई भी समझदार व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि ये तरीक़े स्त्रियों तथा समूचे समाज को विनष्ट करनेवाले नहीं हैं या उनकी बुराई से ज़ुल्म, बहुपत्नी-प्रथा की बुराई या ज़ुल्म से — यदि इस में कोई बुराई या अन्याय है — बढ़कर नहीं है।

परन्तु इन सभी बातों से हटकर, प्रश्न यह है कि बहुपत्नी-प्रथा में ज़ुल्म का कौन-सा पहलू है ? यदि एक व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियाँ हैं और वह सबके अधिकारों को न केवल पहचानता है वरन् सबके साथ न्यायपूर्ण नीति अपनाता है तो किस दर्शन, किस क़ानून तथा किस नैतिक मापदण्ड से उसे ज़ालिम कहा जा सकता है ? परन्तु यदि वह अपनी किसी पत्नी का हक़ अदा नहीं करता या पत्नियों के बीच न्याय नहीं करता तो निस्सन्देह यह अत्याचार है। लेकिन बहुपत्नी प्रथा से इसका क्या सम्बन्ध ? एक पत्नी होते हुए भी पुरुष हक़ मार सकता या अन्याय कर सकता है — और ख़ुदा का डर तथा नैतिक मूल्यों का आदर न हो तो अन्याय करता है और हमारे समाज में इसके अनगिनत उदाहरण मौजूद हैं — दूसरी ओर कई पत्नियाँ होते हुए भी न्याय का रवैया अपनाया जा सकता है तथा ख़ुदा से डरनेवालों की ज़िन्दगियाँ इस न्याय पर साक्षी हैं। अतः एक पत्नी-प्रथा न्याय का तथा बहुपत्नी-प्रथा ज़ुल्म का

पर्याय बिल्कुल नहीं हैं। पुरुष का वह रवैया न्याय या ज़ुल्म है, जो वह एक पत्नी अथवा बहुपत्नी प्रथा के रूप में अपनाता है तथा इसका कोई सम्बन्ध मूलत: एक पत्नी या बहुपत्नी प्रथा से नहीं, बल्कि इंसान की नैतिक श्रेष्ठता या हीनता से है।

इस संदर्भ में यह बात कही जा सकती है कि यह तो एक सैद्धान्तिक बहस-है, व्यावहारिक जीवन में देखिए तो दशा बहुत ही ख़राब है। ऐसे लोग उँगलियों पर गिने जा सकते हैं जो अपनी पत्नियों के बीच न्याय करते हों वरना अधिकतर लोग एक पत्नी की ओर ऐसे झुक जाते हैं कि दूसरी को बिल्कुल भुला ही देते हैं। यदि व्यावहारिक जीवन में यह सब हो रहा है तो सैद्धान्तिक दर्शन बघारने से क्या लाभ ? एक ऐसी पद्धति का चलना क्यों बाक़ी रहे जिसके साथ अत्याचार की एक भयानक कहानी चिमटकर रह गई हो ?

यह बात विभिन्न शब्दों में बड़े-बड़े क़ानूनदानों की ओर से पेश की जाती है और जनसाधारण को बहुत प्रभावित करती है। परन्तु थोड़े से सोच-विचार के पश्चात् ही इसकी हक़ीक़त खुल जाती है। यह मानना कि एक से अधिक पत्नियाँ रखनेवाले व्यक्ति आम तौर से अन्याय व अत्याचार की राह अपनाते हैं, किसी सर्वेक्षण के आधार पर नहीं कही जाती है। अपने आस-पास की किसी घटना को बुनियाद बनाकर लोग इस प्रकार की राय क़ायम कर लेते हैं। दूसरी ओर विधिवेत्तागण तथा न्यायपालिका से सम्बन्धित लोग उन मुक़द्दमों की बुनियाद पर राय क़ायम करते हैं जो अदालतों में दायर किए जाते हैं, जबकि वे जानते हैं कि अदालतों में अच्छे सम्बन्धवाले केस नहीं आते बल्कि बहुत अधिक बिगड़े हुए सम्बन्धों के केस जाते हैं; ऐसे केसों को बुनियाद बनाकर बहुपत्नी-प्रथा के विषय में बुरी राय क़ायम करना ऐसा ही है जैसे अदालतों में ज़ुल्म, धोखाधड़ी, बेईमानी, क़त्ल, लड़ाई-झगड़ों के मुक़द्दमों की भरमार देखकर एक व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल ले कि सम्पूर्ण मानवजाति अत्याचारी तथा गर्दन मारने योग्य है अथवा यह कि इंसानी सम्बन्धों एवं मामलों में ज़ुल्म एवं ज़्यादती का आम चलन है। अत: सम्बन्धों एवं मामलों को ही सिरे से समाप्त कर देना चाहिए। मुस्लिम समुदाय में बहुपत्नी-विवाह का कितना प्रचलन है और इस प्रचलन के परिणाम क्या हैं ? यदि इसका नियमित रूप से

जाइज़ा लिया जाए तो तस्वीर इतनी भयानक न निकलेगी जितनी विरोधियों ने पेश की है।

फिर भी आइए थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं कि एक से अधिक पत्नियाँ रखनेवाले लोग आमतौर से अपनी पत्नियों के हुक़ूक़ अदा नहीं करते! प्रश्न यह है कि क्या किसी तरीक़े को समाप्त करने के लिए यह कारण उचित हो सकता है कि लोग उसकी नैतिक तथा क़ानूनी ज़िम्मेदारियाँ अदा नहीं करते? यदि सोचने का यह तरीक़ा ठीक है तो एक पत्नी-प्रथा ही नहीं वरन् वैवाहिक सम्बन्ध ही समाप्त कर देना होगा क्योंकि ऐसे व्यक्ति थोड़े ही हैं जो अपनी पत्नियों के सारे अधिकार पूरी तरह अदा करते हों और यही दशा स्त्रियों की भी है। यह मामला वैवाहिक सम्बन्धों तक सीमित नहीं रहता। सोच-विचार के इस तरीक़े की बुनियाद पर प्रशासन व्यवस्था को भी त्यागना होगा क्योंकि कुछ गिने चुने लोगों को छोड़कर शासकों की बड़ी संख्या ज़ुल्म अत्याचार, ज़्यादती, साम्राज्यवाद तथा मानव-दमन के निन्दनीय दुर्गुणों का प्रदर्शन करती नज़र आती है, साथ ही वर्तमान् वृहद् राज्य का कार्य-क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत होता है और वह यदि ज़ुल्म तथा ज़्यादती पर तुल जाए तो उसके परिणाम अत्यन्त भयानक होते हैं, तो क्या शासन व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाए?

यह बात शासन व्यवस्था तक भी सीमित नहीं है। आज इंसानी ज़िन्दगी का कोई क्षेत्र तथा कोई विभाग ऐसा नहीं है जो ज़ुल्म और बद-दियानती से पाक हो, तो क्या इन समस्त क्षेत्रों एवं विभागों को त्यागकर जंगलों और गुफाओं में निवास किया जाए?

वास्तव में अत्याचार की क़िस्में और शक्लें अनेक होती हैं। कुछ तरीक़े, कुछ परम्पराएँ तथा कुछ संस्थाएँ वस्तुतः अत्याचारपूर्ण होती हैं। अत्याचार को समाप्त करने का एक ही तरीक़ा है कि उन्हें समाप्त कर दिया जाए। जैसे ब्याज का लेन-देन; छूत-छात का तरीक़ा; सती-प्रथा; विधवा-विवाह निषेध, स्त्री का मानवाधिकारों से वंचित होना, वर्ण-भेद, शोषण एवं साम्राज्यवाद, इनमें से हर चीज़ वस्तुतः ज़ुल्म है और मिटाए जाने योग्य है।

ज़ुल्म का एक रूप वह होता है जो नैतिक मूल्यों का उल्लंघन तथा

क़ानून तोड़ने का परिणाम होता है। स्पष्ट है कि इस ज़ुल्म का यह इलाज नहीं है कि आप नैतिक मूल्यों या क़ानून ही को बदल दें। इसका इलाज़ नैतिक मूल्यों के आदर तथा क़ानून का पालन करने ही में निहित है। यह काम दिलो-दिमाग़ को बदलने, अच्छी सोसाइटी बनाने और क़ानून को वास्तविक रूप में बलपूर्वक लागू करने से होता है। ज़ुल्म दाम्पत्य-जीवन में हो या सामाजिक क्षेत्र में अथवा राजनीतिक व्यवस्था में, इसका उन्मूलन शुद्ध हृदयता, साफ़-सुथरे समाज के निर्माण तथा न्यायनिष्ठ शासन-व्यवस्था की स्थापना ही से सम्भव है।

कुछ लोगों की ओर से बहुपत्नी-विवाह के विषय में जो ज़ुल्म हो रहा है वह इसी श्रेणी में आता है। स्त्री पर ज़ुल्म का कारण बहुपत्नी-प्रथा का प्रावधान नहीं बल्कि समाज का वैचारिक, नैतिक, क़ानूनी तथा राजनीतिक बिगाड़ है और यह ज़ुल्म उसी समय दूर हो सकता है जब आप समाज का वैचारिक, नैतिक तथा राजनीतिक सुधार करें। समाज के बिगाड़ के साथ बहुपत्नी-विवाह को क़ानून द्वारा निषिद्ध ठहरा दें तब भी कोई फ़ायदा न होगा। जो व्यक्ति नैतिक सीमाओं का पालन न करता हो वह एक से अधिक पत्नियाँ न रखते हुए भी अपनी पत्नी पर अत्याचार के पहाड़ तोड़ सकता है, वह क़ानून के अन्तर्गत् एक पत्नी रखते हुए, क़ानून से परे अनेक स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध रख सकता है। वह यह भी कर सकता है कि अपनी पत्नी को तलाक़ देकर दूसरी स्त्री से शादी रचा ले और जब उससे जी भर जाए तो तीसरी पत्नी ले आए। परन्तु एक पत्नी प्रथा उसे ऐसा करने से नहीं रोक सकती। रोमलैंडो (Rom Landau) स्पष्ट शब्दों में कहता है :

> "(पश्चिम में) एक पुरुष एक साथ दो पत्नियाँ नहीं रख सकता परन्तु कोई व्यक्ति उसे इस बात से नहीं रोक सकता कि वह एक वर्ष की अवधि में दस पत्नियाँ रख ले।" (Sex, Life and Faith, P.137)

बहुपत्नी विवाह पर एक आपत्ति यह भी की जा सकती है कि बहुपत्नी-प्रथा स्वयं अपने आप में ज़ुल्म का कारण है। एक पुरुष की कई

पत्नियाँ हों तो यह संभव नहीं कि वह सबके साथ समान रूप से प्रेम करता हो। सबके साथ हार्दिक सम्बन्ध समान नहीं हो सकता तो व्यावहारिक रवैया भी समान नहीं होगा। निस्सन्देह पुरुष का झुकाव एक पत्नी की ओर अधिक होगा तथा वह दूसरी पत्नी या पत्नियों के साथ इंसाफ़ न कर सकेगा। अतः यह बात उचित नहीं है कि बहुपत्नी विवाह की अनुमति देकर स्त्रियों के बीच न्याय की माँग की जाए। सही बात यह है कि बहुपत्नी-विवाह की अनुमाति ही न दी जाए।

यह दूसरी आपत्ति है जिसे बुनियाद बनाकर अच्छे-अच्छे विद्वान बहुपत्नी-विवाह का विरोध करते हैं। परन्तु यह आपत्ति देखने में जितनी ठोस लगती है वास्तव में उतनी ठोस है नहीं। निस्सन्देह कोई पुरुष कई स्त्रियों से समान रूप से प्रेम नहीं कर सकता। परन्तु प्रेम के समान न होने की दशा में ज़ुल्म का पाया जाना अपरिहार्य नहीं है। यदि इंसान की अन्तरात्मा जीवित और धार्मिक, दीनी व नैतिक विवेक जागृत हो, समाज ज़ुल्म तथा नाइंसाफ़ी को सहन न करता हो और क़ानून की पकड़ सख़्त हो तो प्रेम के अन्तर बल्कि प्रेम के अभाव के बावजूद इंसान का रवैया स्त्रियों के साथ न्यायशील होगा। पुरुष का सम्बन्ध केवल पत्नी ही से तो नहीं होता बल्कि उसका सम्पर्क माता-पिता, बेटे-बेटी, भाई-बहन, नातेदार, पड़ोसी, आदि सबसे होता है तथा प्रत्येक से उसका हार्दिक सम्बन्ध अलग-अलग हैसियत तथा विभिन्न दर्जे का होता है इसके बावजूद ख़ुदा से डरनेवाला तथा सदाचारी व्यक्ति सबके अधिकारों को पहचानता तथा सबके साथ न्यायोचित रवैया अपनाता है।

प्रत्येक पुरुष को माता-पिता तथा पत्नी से प्रेम होता है। यह प्रेम सामान्यतः एक-सा नहीं होता। साथ रहने की स्थिति में दोनों पक्ष पुरुष के लिए बड़ी आज़माइश का कारण सिद्ध होते हैं। माता-पिता चाहते हैं कि बेटा उनसे प्रेम करे और पत्नी चाहती है कि पति उसपर प्रेमोन्यक्त रहे। प्रेम की यही कशमकश सास और बहू के कलह को जन्म देती है। सम्बन्धों की इस संवेदनशीलता तथा डाह एवं ईर्ष्या की इन तीव्र भावनाओं के होते हुए ख़ुदा से डरनेवाला तथा सदाचारी व्यक्ति माता-पिता तथा पत्नी सभी के अधिकारों को अदा करता है।

कभी-कभी प्रेम और हार्दिक सम्बन्धों का यह अन्तर उन लोगों के प्रति भी पाया जाता है जिनका क़ानूनी और नैतिक पद समान तथा उनके अधिकार बराबर के होते हैं, जैसे औलाद। माता-पिता को समस्त बेटे-बेटियों से समान प्रेम नहीं होता फिर भी हर शरीफ़ और अल्लाह से डरनेवाला पिता अपनी सब सन्तान के अधिकार पहचानता है और किसी के साथ अन्याय का रवैया नहीं अपनाता।

इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है, वह यह कि क्या क़ानून द्वारा हार्दिक प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है या उसे मिटाया जा सकता है ? बहुपत्नी-विवाह को यदि निषिद्ध ठहरा दिया जाए तो क्या स्त्री दूसरों से कटकर अकेली पुरुष के दिल की स्वामिनी बन जाएगी ? यदि 'पुरुष की प्रेमासक्ति बजाए अपनी पत्नी के किसी और की ओर हो जाए तो क्या क़ानून इस प्रवृत्ति को ख़त्म कर सकता है ? क्या पश्चिम की एक पत्नी-व्यवस्था में स्त्री को पति की बेमेल मुहब्बत प्राप्त हो गई है और अन्य स्त्रियों का प्रेम उसके मन से निकल गया है ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है और निस्सन्देह ऐसा ही है तो बहुपत्नी-विवाह के विरुद्ध हाय तौबा और चीख़-पुकार मचाना व्यर्थ है।

बहुपत्नी-विवाह को ज़ुल्म ठहरानेवाले दुहाई तो स्त्री-वर्ग की देते हैं मगर वास्तव में उनके सामने पहली पत्नी का सीमित तथा सतही हित होता है। यदि वे ज़रा गहराई से सोचें और पूरे स्त्री-वर्ग तथा समूची मानवता के व्यापक व वास्तविक हित को सामने रखकर प्रकरण पर विचार करें तो बहुपत्नी-प्रथा की सीमित तथा प्रतिबंधों के साथ अनुमति को ज़ुल्म तथा अन्याय समझने के बजाय उसे स्त्री-वर्ग एवं समस्त मानवता के लिए रहमत और नेमत ठहराएँगे।

यह एक अकाट्य सत्य है कि पुरुष ने भाँति-भाँति के सुन्दर जाल बिछाकर सदा स्त्री को प्रयोग किया है, उससे आनन्द लिया है और उसके अधिकारों से सदैव ग़फ़लत बरती है। इस्लाम इस ज़ुल्म तथा धोखे को हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहता है। वह सामयिक, अनियमित तथा अनैतिक सम्बन्धों के चोर दरवाज़ों को सख़्ती के साथ बन्द कर देता है और एक ही द्वार

खुला रखता है और वह पति-पत्नी सम्बन्ध का नैतिक तथा शिष्टतापूर्ण ढंग है। अर्थात् पुरुष स्थायी सहचरता के लिए स्त्री का चयन करे और उसकी तथा उसकी सन्तान की नैतिक तथा क़ानूनी ज़िम्मेदारी अपने सिर ले। यदि पुरुष पहले से पत्नी रखता है तब भी वह इसी शर्त के साथ किसी स्त्री को प्राप्त कर सकता है किन्तु ऐसी स्थिति में एक अतिरिक्त शर्त यह है कि उसे दोनों पत्नियों के बीच बराबरी का बरताव रखना होगा और दोनों की सन्तान पर समान ध्यान देना होगा। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसे दूसरे विवाह का अधिकार नहीं है। उसे किसी अन्य स्त्री से न तो अवैध सम्पर्क बनाने और न उसकी सन्तान के भविष्य को तबाह करने की अनुमति है। यदि वह ऐसा करता है तो आख़िरत (परलोक) की भयानक यातना से पहले दुनिया ही में उसे कठोर दण्ड भुगतना होगा।

ज़रा शान्त मन से सोचकर बताइए कि बहुपत्नी-विवाह की यह सीमित तथा सशर्त अनुमति स्त्री वर्ग पर अत्याचार के पहाड़ तोड़ती है अथवा उसके लिए न्याय, इंसाफ़ और रहमत व बरकत के द्वार खोलती है?

क्या एक पत्नी-विवाह के क़ानूनी प्रचलन में स्त्री के अधिकारों की सुरक्षा है जिसके द्वारा पुरुष के लिए सदा स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध क़ायम करने, तथा ऐयाशी और कामवासना के रास्ते खुले हैं तथा जिसने अनेक स्त्रियों के सतीत्व एवं उनकी आबरू और ज़िन्दगी को तबाह कर डाला है? क्या बहुपत्नी-विवाह के निषेध में स्त्री के लिए रहमत तथा सुकून की सामग्री है जिसके परिणाम स्वरूप अनेक स्त्रियाँ बिना विवाह के रह जाती हैं और जिनके सामने केवल दो रास्ते होते हैं, या तो वह पुरुष की सुरक्षा एवं भरण-पोषण के बिना मुसीबत भरी कुँआरीपन की ज़िन्दगी गुज़ारें और अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को सदा के लिए दफन कर दें या वे अपने आपको ऐयाश और स्वार्थी पुरुषों के हवाले कर दें, जो उनका यौवन तथा सौन्दर्य लूटकर, उन्हें धुतकार दें और हरामी सन्तान से उनकी गोद भर दें। और ये हरामी बच्चे पिता की सरपरस्ती तथा प्यार से वंचित आवारा और दुर्दशाग्रस्त मारे-मारे फिरें। प्रसिद्ध थियोसोफ़ी नेता (Theosophist) श्रीमती ऐनी बसेंट (Mrs. Annie Besant) कहती हैं:

"पश्चिम में एक पत्नी-प्रथा झूठी और दिखावे की है, लेकिन हक़ीक़त में बहुपत्नी-प्रथा है परन्तु बिना किसी ज़िम्मेदारी के! जब आशना स्त्री (Mistress) से पुरुष का मन भर जाता है तो वह उसे निकाल बाहर करता है, तत्पश्चात् वह गिरते-गिरते वेश्या स्त्री (Woman of Street) बन जाती है। क्योंकि उसका प्रारंभिक प्रेमी उसके भविष्य का कोई दायित्व नहीं लेता तथा वह बहुपत्नी-विवाह वाले घर में सुरक्षित पत्नी तथा माता बनने के मुक़ाबले में सौ गुना अधिक नीच बन जाती है। जब हम हज़ारों विपत्तिग्रस्त स्त्रियों को देखते हैं जो यूरोप के शहरों में रात्रि के समय भीड़ लगाए होती हैं तो हमें निस्सन्देह यह महसूस करना पड़ता है कि पश्चिम को बहुपत्नी-विवाह के बारे में इस्लाम की निन्दा करने का अधिकार नहीं है। स्त्री के लिए यह कहीं अधिक उत्तम है, कहीं अधिक आनन्दपूर्ण है, ... कहीं अधिक सम्मानजनक है कि वह बहुपत्नी-प्रथा के तहत जीवन बिताए तथा वह एक पुरुष से आबद्ध हो। उसकी गोद में वैध संतान हो और वह सम्मानपूर्वक रह रही हो, इस दशा के मुक़ाबले में कि उसका सतीत्व लुटे, वह सड़कों पर निकाल बाहर कर दी जाए, शायद एक हरामी बच्चे के साथ, जो ग़ैर क़ानूनी हो, उसका कोई आश्रय न हो, कोई उसकी देख-रेख तथा चिन्ता करनेवाला न हो, उसकी रातों पर रातें इस प्रकार गुज़रें कि वह किसी भी राहगीर का बेबस शिकार बनने को तैयार हो, माता बनने के सम्मान से वंचित सबकी धुतकारी हुई।"[1]

परिवार तथा वैवाहिक सम्बन्धों का स्थायित्व

बहुपत्नी विवाह की अनुमति के विरुद्ध एक तर्क यह दिया जाता है कि इससे परिवार क़ी व्यवस्था प्रभावित होती है। आरम्भ में परिवार का निर्माण एक पुरुष और स्त्री के वैधानिक सम्बन्ध से होता है परन्तु दोनों का परस्पर प्रेम इस सम्बन्ध को और अधिक से अधिक स्थिर तथा दृढ़ कर देता है। प्रेम का यह

1 Marriage Commission Report X' rayed, P.P 273, 274.

नाज़ुक दर्पण पुरुष द्वारा दूसरा विवाह करने से चकनाचूर हो जाता है और अन्ततः परिवार रूपी भवन हिलने लगता है।

यही स्थिति वैवाहिक सम्बन्ध की है। यह सम्बन्ध न केवल परिवार की जान है बल्कि नैतिक जीवन के लिए भी इसका बुनियादी महत्व है। यह रिश्ता स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे से इस प्रकार जोड़ देता है कि वे "एक जान-दो शरीर" बन जाते हैं। पुरुष द्वारा किसी अन्य स्त्री से प्रेम तथा शादी करने की स्थिति में यह रिश्ता बुरी तरह प्रभावित होता है और कभी-कभी तो टूट भी जाता है।

जो लोग इस प्रकार की बातें करते हैं यदि उनका मन्तव्य यह है कि एक पत्नी-प्रथा में परिवार और पति-पत्नी सम्बन्ध तुलनात्मक रूप से अधिक स्थिर एवं मज़बू होते हैं, तो हम भी उनका खण्डन नहीं करते — हम तो एक पत्नी-प्रथा के सामान्य प्रचलन को ही बेहतर मानते हैं परन्तु इसी के साथ बहुपत्नी-प्रथा के प्रचलन को भी कुछ शर्तों तथा सीमाओं के साथ जाइज़ ठहराते हैं — निस्संदेह एक पत्नी-प्रथा में परिवार तथा सम्बन्ध को अधिक स्थायित्व प्राप्त होता हैं परन्तु दो शर्तों के साथ! एक यह कि पुरुष तथा स्त्री एक दूसरे के अधिकारों का पूरा-पूरा ध्यान रखें, और दूसरी यह कि समाज में स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध निषिद्ध तथा हराम हो।

यदि स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के अधिकारों का पालन न करें तो बहुपत्नी-प्रथा ही में नहीं, एक पत्नी-प्रथा में भी परिवार में, एवं दाम्पत्य सम्बन्धों में स्थिरता नहीं आएगी। पूर्वीय देशों में एक पत्नी-प्रथा का आम चलन है और एक पत्नी वाले परिवारों में कम ही ऐसे परिवार हैं जहाँ पति-पत्नी सम्बन्ध ख़ुशगवार एवं मधुर हों, यहाँ तक कि घरेलू कलह और तलाक़ की घटनाएँ होती रहती हैं। यह तो पूर्व का हाल है। पश्चिम में, जहाँ बहुपत्नी-प्रथा क़ानून द्वारा निषिद्ध है, ज़रा- ज़रा सी बात पर विवाह-विच्छेद तथा परिवारिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त होती रहती है। इसका कारण एक-दूसरे के अधिकारों का पालन न करना है।

इसी प्रकार यदि समाज में स्वच्छन्द यौन-संबन्धों की नैतिक अथवा

क़ानूनी गुंजाइश हो तो न तो पति-पत्नी सम्बन्धों का महत्व शेष रह जाता है और न ही पारिवारिक व्यवस्था स्थिर रह पाती है। जब क़ानूनी और अख़्लाक़ी दायित्वों के बिना लैंगिक सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हों तो क़ानूनी और नैतिक ज़िम्मेदारियों का भार क्यों उठाया जाए? इस तरीक़े के प्रचलन से वैवाहिक सम्बन्ध तथा पारिवारिक व्यवस्था कैसे स्थिर रह सकती है?

गत पृष्ठों में यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि जिस समाज में बहुपत्नी-विवाह की अनुमति नहीं होती उसमें स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों का लावा फूट पड़ता है तथा स्त्री, पुरुष विवाहित या अविवाहित सब ही अश्लीलता के इस सैलाब में बह जाते हैं तथा अन्त में क़ानून को भी उनका समर्थन करना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि परिवार का ढाँचा टूट-फूट जाता है और पति-पत्नी सम्बन्धों का महत्व समाप्त हो जाता है। यहाँ तक कि लोग इस सम्बन्ध को रूढ़िवाद की बेड़ियाँ तथा अप्राकृतिक तरीक़ा समझने लगते हैं और इसके मुक़ाबले में स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध को प्राथमिकता देते हैं।[1] ये स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध स्थायी नहीं होते, स्त्री-पुरूष आज किसी एक से सम्पर्क बनाते हैं तो कल किसी दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा परसों किसी तीसरे से। सबसे अधिक सभ्य एवं शिक्षित देश यूरोप और अमेरिका की पारिवारिक व्यवस्था की दुर्दशा और पति-पत्नी सम्बन्धों की निकृष्ट दशा पेश करते हैं। यही वे देश हैं जिनमें एक पत्नी प्रथा दृढ़ता से लागू है। इसके विपरीत मुस्लिम समाज की दशा पारिवारिक व्यवस्था तथा पति-पत्नी सम्बन्धों के स्थायित्व की दृष्टि से पाश्चात समाजों से कई गुना बेहतर है। जबकि यह समाज तुलनात्मक रूप से कम सभ्य, कम उन्नत तथा कम शिक्षित होने का ढिंढोरा पीटा जाता है तथा इस्लामी एवं नैतिक दृष्टि से इसका स्तर भी बहुत ऊँचा नहीं होना बताया जाता है। जबकि

---

1. पश्चिमी देशों में "Live-in-relations" (बिना विवाह के स्त्री-पुरुष के, पति-पत्नी की तरह एक साथ रहने) की प्रथा ख़ूब चल रही है। परिवार का ढाँचा टूटने-फूटने की दशा यह है कि "Single Parent Children" (केवल माँ या केवल बाप के साथ रहनेवाले बच्चे) की प्रथा भी ज़ोरों पर है। ज़रा सी बात पर खट से तलाक़ ली और बच्चों को माँ या बाप के सिर पर डाल कर किसी और के साथ मौज-मस्ती का प्रबन्ध कर लिया। यह है ''एकपत्नी-प्रथा'' की क़ानूनी गर्वपूर्णता का हाल। —प्रकाशक

यह वह समाज है जिसमें बहुपत्नी-विवाह की नैतिक तथा क़ानूनी अनुमति है और सीमित रूप से इस अनुमति से फ़ायदा भी उठाया जाता है। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इस्लाम में यौन-स्वच्छन्दता धार्मिक रूप से हराम, नैतिक रूप से दोषपूर्ण तथा क़ानून की नज़र में कठोर दण्डनीय है, यद्यपि यह दण्ड सऊदी अरब आदि कुछ ही मुस्लिम राष्ट्रों के सिवा अधिकतर मुस्लिम देशों में लागू नहीं है— यदि परिवार और दाम्पत्य सम्बन्ध का स्थायित्व एक पत्नी-प्रथा पर आधारित होता और बहुपत्नी-प्रथा परिवार और दाम्पत्य सम्बन्धों को कमज़ोर करने का कारण होती तो निस्सन्देह परिणाम इसके विपरीत होता जो हम बड़े पैमाने पर देख रहे हैं। हक़ीक़त यह है कि वास्तविक चीज़ एक पत्नी व्यवस्था, या बहुपत्नी-व्यवस्था नहीं, वरन् यह बात है कि पति-पत्नी एक दूसरे के अधिकारों की पूर्ति करते हैं या नहीं और स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध निषिद्ध हैं अथवा नहीं।

इस्लाम एक पत्नी या बहुपत्नी पर नहीं-बल्कि इन्हीं दो चीज़ों पर ज़ोर देता है। एक ओर वह ऐसे नैतिक, सामाजिक तथा क़ानूनी तरीक़े अपनाता है जिनसे स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के अधिकारों की पूर्ति की ओर अधिक से अधिक आकृष्ट हों तथा अधिकार-हनन के अवसर कम से कम रह जाएँ।

दूसरी ओर वह स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों के द्वार को अत्यन्त कठोरता से बन्द करता है तथा उसे किसी भी परिस्थिति एवं किसी भी बहाने से खोलने या उसका कोई झरोखा तक खुला रखने को तैयार नहीं होता।

वास्तव में बहुपत्नी-प्रथा की सीमित तथा सशर्त अनुमति का उद्देश्य ही यह है कि परिवार एवं दाम्पत्य सम्बन्ध अधिक-से-अधिक स्थिर एवं दृढ़ हों। मानव-प्रकृति की कमज़ोरियों को भली-भाँति जाननेवाले परमेश्वर को इस हक़ीक़त का अच्छी तरह ज्ञान था कि बहुपत्नी-विवाह के निषेध तथा एक पत्नी-विवाह के क़ानून द्वारा लागू करने से स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों का लावा फूट पड़ेगा तथा न केवल समाज अश्लीलता के सैलाब में बह जाएगा बल्कि दाम्पत्य सम्बन्ध का महत्व व्यावहारिक रूप से समाप्त हो जाएगा तथा ख़ानदान का ढाँचा टूट-फूट जाएगा।

बहुपत्नी-विवाह की अनुमति का आशय यह है कि जो लोग किसी

कारणवश एक पत्नी पर संतोष न कर सकते हों या किसी विशेष परिस्थिति में पहली पत्नी के अतिरिक्त दूसरी पत्नी या पत्नियों की आवश्यकता अनिवार्य हो जाए, तो वे चोरी छिपे या खुल्लम-खुल्ला स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध क़ायम करके अपने और सामाज के नैतिक विधान एवं सदाचार को तबाह, दाम्पत्य सम्बन्ध को कमज़ोर तथा पारिवारिक व्यवस्था को विकृत न करें। वे जाइज़ और सभ्य तरीक़े से वांछित स्त्री के साथ वैवाहिक सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित करें, कि पहली पत्नी के अधिकार प्रभावित न हों।

इस्लाम में बहुपत्नी-विवाह की सशर्त व सीमित अनुमति, स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों पर बिना शर्त प्रतिबन्ध लगाने के लिए है। कमज़ोरियों से भरा हुआ इंसान आख़िर फ़रिश्ता तो है नहीं। यदि आप चाहें कि वह स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों की ओर ज़रा भी आकृष्ट न हो — विशेषकर वर्तमान् भड़काऊ वातावरण में — तो आपको बहुपत्नी विवाह की सीमित तथा सशर्त अनुमति बरक़रार रखनी होगी। इसके बिना स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों का उन्मूलन कदापि सम्भव नहीं।

मुमकिन है कि बहुपत्नी-विवाह वाले परिवारों में सम्बन्धों की मधुरता उतनी न हो जितनी एक पत्नीवाले परिवारों में होती है, परन्तु यह सीमित परिवारों का मामला होगा। एक पत्नी-प्रथा के क़ानून द्वारा लागू करने का परिणाम तो यह होगा कि यौन-स्वच्छन्दता की महामारी फैल जाएगी; जिसके नतीजे में सम्बन्धों की मधुरता, दाम्पत्य सम्बन्धों का महत्व तथा पारिवारिक व्यवस्था की सुदृढ़ता, सभी एक के बाद एक समाप्त हो जाएँगी।

बहुपत्नी-विवाह की अनुमति का निष्कर्ष यह है कि स्त्री-पुरुष का वही सम्बन्ध उचित तथा सहनीय है जो पति-पत्नी सम्बन्ध के रूप में हो, जिससे परिवार की बुनियाद पड़े, तथा जिसमें इंसान पत्नी एवं बच्चों के अधिकारों को ठीक-ठीक अदा करने को तैयार हो। इसके अतिरिक्त हर यौन-सम्बन्ध अवैध और क़ानून के तहत अत्यन्त कठोर दण्ड का भागी है।

क्या इसके पश्चात् भी आप कहते रहेंगे कि इस्लाम ने बहुपत्नी-विवाह की अनुमति देकर दाम्पत्य सम्बन्ध तथा परिवार को कमज़ोर किया है ?